समाधि के द्वार पर

प्रवचन-क्रम

1. समाधि के द्वार पर..2
2. समाधि के तीन चरण..16
3. सम्मोहन का उपयोग...25
4. एकाकीपन का बोध...39
5. मन की मृत्यु ही समाधि है..48
6. अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, असंग्रह...................................65

समाधि के द्वार पर
पहला प्रवचन

समाधि के द्वार पर

मेरे प्रिय आत्मन्!
जैसे अंधेरे में कोई अचानक दीये को जला दे, और जहां कुछ भी दिखाई न पड़ता हो वहां सभी कुछ दिखाई पड़ने लगे, ऐसे ही जीवन के अंधकार में समाधि का दीया है। या जैसे कोई मरुस्थल में वर्षों से वर्षा न हुई हो और धरती के प्राण पानी के लिए प्यास से तड़पते हों, और फिर अचानक मेघ घिर जाएं और वर्षा की बूंदें पड़ने लगें, तो जैसा उस मरुस्थल के मन में शांति और आनंद नाच उठे, ऐसा ही जीवन के मरुस्थल में समाधि की वर्षा है। या जैसे कोई मरा हुआ अचानक जीवित हो जाए, और जहां श्वास न चलती हो वहां श्वास चलने लगे, और जहां आंखें न खुलती हों वहां आंखें खुल जाएं, और जहां जीवन तिरोहित हो गया था वहां वापस उसके पदचाप सुनाई पड़ने लगें, ऐसा ही मरे हुए जीवन में समाधि का आगमन है।
समाधि से ज्यादा महत्वपूर्ण जीवन में कुछ भी नहीं है। न तो कोई आनंद मिल सकता है समाधि के बिना, न कोई शांति मिल सकती है, न कोई सत्य मिल सकता है।
समाधि को समझ लेना इसलिए बहुत उपयोगी है। समझ लेना ही नहीं--क्योंकि समाधि उन कुछ थोड़ी सी बातों में से है जिसे समझ लेना काफी नहीं है--उसमें से होकर गुजरें तो ही उसे समझ भी सकते हैं।
जैसे कोई नदी के तट पर खड़ा हो और हम उसे कहें कि आओ, तुम्हें तैरना सिखा दें! और वह कहे कि पहले मैं तैरना सीख लूं तट पर ही, तभी पानी में उतरूंगा। पहले मैं समझ लूं, फिर पानी में उतरूं। तो तर्क उसका गलत न होगा। ठीक ही कहता है वह। बिना तैरना जाने कोई पानी में उतरने को राजी भी कैसे हो! लेकिन एक और बड़ी कठिनाई है, उसकी कठिनाई तो है ही, सिखाने वाले की भी कठिनाई है, क्योंकि बिना पानी में उतरे तैरना सिखाया भी कैसे जाए! तो तैरना सिखाने वाला कहने लगे, उतर आओ पहले! क्योंकि बिना पानी में उतरे तैरना न सीख सकोगे। तो वह भी गलत न कहे। और जिसे सीखना है वह कहे, भयभीत हूं मैं, बिना तैरे उतरूंगा नहीं। पहले सीख लूं, तब उतर सकता हूं।
समाधि की बात भी कुछ ऐसी ही है। समाधि में गए बिना कुछ भी पता नहीं चल सकता है। लेकिन हम जानना चाहेंगे किनारे पर खड़े होकरः क्या है समाधि? शब्द जितना कह सकते हैं उतनी कहने की कोशिश करूंगा। शब्द जो नहीं कह सकते हैं उसे कहने का कोई रास्ता नहीं है।
सुना है मैंने, एक फकीर के पास कोई गया था, उससे पूछने लगा थाः किस समाधि की बात करते हो? किस ध्यान की बात करते हो? क्या है वह? कुछ बोलो! समझाओ! बताओ!
वह फकीर आंख खोले बैठा था, उसने तत्काल आंख बंद कर ली।
उस आदमी ने कहा, यह भी खूब रहा! कम से कम आंख खोले थे। आंख तो खोलो! मैं
तो जानने आया हूं कि समाधि क्या है? ध्यान क्या है? जिसकी दिन-रात बात करते हो, कुछ तो बताओ!
वह फकीर बैठा था, वह एकदम गिर गया!
उस आदमी ने कहा, कर क्या रहे हो यह? कहीं मर मत जाना! मैं तो सिर्फ समाधि के लिए पूछने आया हूं।
उस फकीर ने आंख खोली, उसने कहा, मैं बताने की कोशिश कर रहा हूं।
उस आदमी ने कहा, ऐसे नहीं, तुम तो शब्दों से ही बता दो।
वह फकीर कहने लगा, शब्दों में जो कहा जा सकता है वह समाधि के संबंध में कुछ भी न होगा। इसलिए मैंने तुम्हें कुछ करके बताया है।
लेकिन क्या, कोई आंख बंद कर ले, कोई गिर जाए, तो भी क्या पता चलेगा हमें?
नहीं; हमारी ही आंख बंद हो और हम ही गिर जाएं किसी क्षण में, न केवल बाहर से बल्कि भीतर से भी गिर जाएं और बिखर जाएं, जैसे कोई बूंद किसी सागर

में खो जाए, या जैसे कोई बीज किसी मिट्टी में टूट जाए, ऐसा हमारे भीतर ही घटित हो तो ही हम पहचान पाएं कि समाधि क्या है।

लेकिन कुछ इशारे किए जा सकते हैं। सुबह तो मैं कुछ इशारे करूंगा और सांझ चाहूंगा कि हम सब साथ समाधि में प्रवेश करें। तो जिनकी सुनने में उत्सुकता है, वे सिर्फ सुबह ही आएंगे। जिनकी तैरने में भी उत्सुकता है, जो जाना ही चाहते हैं, वे सांझ आएंगे। सुबह हम बात करेंगे और सांझ स्वाद लेने की कोशिश करेंगे। लेकिन ध्यान रहे, बात से समझ में नहीं आएगा, स्वाद से ही समझ में आ सकता है।
यह भी मैं सोचता हूं कि अच्छा होगा कि मैं इस तरह समझाने की कोशिश करूं, यह बताने की कोशिश करूं कि मैं उस द्वार पर कैसे पहुंच गया। शायद उससे रास्ता साफ हो सके, शायद आपको भी लगे कि यह रास्ता चला जा सकता है। निरंतर लोग मुझसे पूछते भी हैंः उस समाधि पर कैसे पहुंचे?
एक छोटी सी घटना से मैं शुरू करना चाहता हूं।
छोटा था, तो जिनके पास मैं बड़ा हुआ, दुर्भाग्य से या सौभाग्य से वे बहुत जल्दी दुनिया से विदा हो गए। मैं सात ही वर्ष का था तब उनकी मृत्यु आ गई। और मैंने उन्हें धीरे-धीरे मरते देखा। वे एकदम से नहीं मरे; पहले उनकी वाणी खो गई, फिर उनकी आंखें बंद हो गईं, फिर वे बेहोश हो गए और चौबीस घंटे बेहोश रहे। और फिर उसी बेहोशी में धीरे-धीरे, जैसे कोई दीये का तेल चुकता जाए, चुकता जाए और धीमी लौ होती जाए, ऐसे धीरे-धीरे वे डूबे और खो गए। उनको ही मैंने चाहा और प्रेम किया था। उनके पास ही बड़ा हुआ था। उस क्षण तो ऐसा ही लगा था--बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण हुआ।
लेकिन पता नहीं, दुर्भाग्य बहुत बार सौभाग्य भी बन जाते हैं। मेरे लिए मृत्यु की वह पहली घटना थी। और जिसे मैंने चाहा था, उसके विदा हो जाने की भी पहली घटना थी। सारा घर तो रोने लगा, दुखी और पीड़ित होने लगा। पर मुझे निरंतर एक ही बात मन में लगने लगी कि अगर वे नहीं रहे हैं तो अब मेरे रहने की भी क्या जरूरत है? और जिसे मैंने प्रेम किया वही नहीं है, तो अब मैं भी न रहूं। मुझे रोना भी न सूझा। अब आज मुझे समझ में आता है कि रोकर हम दुख प्रकट तो करते हैं, शायद दुख को बहाने की कोशिश करते हैं। अब मैं समझ पाता हूं कि रो-धो कर, चीख-चिल्ला कर, वह जो पीड़ा हम पर उतरी है, उससे हम छुटकारा पा लेते हैं, उसकी रिलीज हो जाती है, वह निकल जाती है।
मैं नहीं रो सका, क्योंकि मुझे लगा कि अगर कोई जिसे मैंने चाहा है, समाप्त हो गया है, तो अब मैं भी समाप्त हो जाऊं, अब मुझे भी जीने की कोई जरूरत नहीं है। उन्हें लोग मरघट ले गए, मुझे लोग घर में बंद कर गए छोटा बच्चा सोच कर--कि मैं मरघट जाऊं, पता नहीं मरघट को देखूं, कैसा मन पर आघात लगे; फिर उन्हें मैं प्रेम करता था, उन्हें जलते देखूं। लेकिन जब घर के लोग चले गए तो मैं भी चुपचाप पीछे के रास्ते से मरघट पहुंच गया। मुझे कुछ पक्का पता न था वहां क्या होने को है। डर से कि घर के लोग नाराज होंगे, छिप कर, वृक्ष पर बैठ कर ही मैंने उन्हें जलते देखा। लौट आया।
उस रात मैं एक ही प्रार्थना लेकर सो गया कि मैं भी मर जाऊं! भगवान, ऐसा
कर कि मैं भी मर जाऊं! जब तक मुझे रात नींद नहीं लगी, एक ही बात मेरे मन में गूंजती रही कि मैं भी मर जाऊं, मुझे भी समाप्त हो जाना है। कब मुझे नींद लग गई, पता नहीं है, लेकिन नींद में भी मेरे मन में यही स्वर दौड़ता रहा, दौड़ता रहा कि मैं मर जाऊं, मैं मर जाऊं, मैं मर जाऊं।
कोई रात के दो या तीन बजे अचानक मेरी नींद टूटी और मुझे लगा कि वह जिसे मैं कह रहा था कि मर जाऊं, मर गया है। सब मर गया है। हाथ हिला नहीं सकता हूं, आंख खोल नहीं सकता हूं, श्वास का कोई पता नहीं मालूम पड़ता है, शरीर है भी या नहीं, उसका भी कुछ पता नहीं पड़ता है। सब मर गया है। लेकिन एक और आश्चर्य कि सब मर गया है, फिर भी मैं हूं--क्योंकि मुझे पता चल रहा है कि सब मर गया है। दोनों बातें एक साथ--सब मर गया है और फिर भी मैं हूं। यह भी पता चल रहा है कि मैं हूं। क्योंकि अगर मैं नहीं हूं तो किसे मालूम हो रहा है कि सब मर गया है?
छोटी ही उम्र थी, लेकिन उसी दिन से मृत्यु मेरे लिए समाप्त हो गई। उस दिन के बाद बहुत प्रियजन मरे, लेकिन फिर मेरे लिए कोई नहीं मरा। दूसरे दिन

सुबह मैं जितनी शांति और आनंद से भरा था, वैसी शांति उस दिन तक मैंने कभी न जानी थी, वैसा आनंद भी न जाना था। एक अनुभव से होकर गुजरा था। अब लौट कर कह सकता हूं--उस दिन तो पता नहीं था, लेकिन अब लौट कर कह सकता हूं--समाधि के द्वार पर वह पहला, पहला झांकना था। समाधि के द्वार पर जिसे झांकना है उसे जीते जी मरने की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है।
लेकिन हम सब तो मरने से बहुत डरे हुए लोग हैं। हम तो जीवन भर इस कोशिश में रहते हैं कि कहीं मर न जाएं। हमारा सारा प्रयास एक ही बात के लिए है कि मर न जाएं। हमारे दर्शन, हमारे धर्म, हमारी फिलासफीज, हमारे गुरु एक ही बात के लिए इंतजाम दे रहे हैं कि घबड़ाओ मत, घबड़ाओ मत। और अगर हम आत्मा की अमरता की बात भी मानते हैं, तो इसलिए नहीं कि हमें पता है कि आत्मा अमर है, बल्कि इसलिए कि इससे मरने का भय कम होता है।
तो दुनिया में मृत्यु से डरने वाले लोग आत्मा की अमरता को जरूर ही मान लेते हैं। हम मृत्यु से बचने के प्रयास में संलग्न हैं। हमारी पूरी जिंदगी जीने की जिंदगी नहीं है, मरने से बचने की जिंदगी है। हमारा धन, हमारे मकान, हमारे मित्र, हमारे प्रियजन, ये सब मृत्यु के खिलाफ हमारी सुरक्षाओं की दीवालें हैं। इसलिए जिस आदमी के पास जितना धन है, वह उतना सुरक्षित अनुभव करता है। जिस आदमी के पास जितना बड़ा किले जैसे मकान है, वह उतना सुरक्षित अनुभव करता है। जिस आदमी के पास सैनिकों का पहरा है, वह उतना सुरक्षित अनुभव करता है। जिस आदमी के पास जितनी शक्ति है, वह समझता है कि मैं सुरक्षित हूं।
हमारी सारी दौड़, अगर हम आदमी की पूरी जिंदगी के राज को समझना चाहें, तो दुनिया में दो ही तरह के आदमी हैंः एक वे जो जीते हैं और एक वे जो मरने से बचने का इंतजाम करते रहते हैं। लेकिन जो मरने से बचने का इंतजाम करता रहता है वह मरने से नहीं बच पाता है, मृत्यु तो आती है। और आश्चर्य तो यह है कि जो जीता है वह मरने से बच जाता है। क्योंकि जीवन की जितनी गहराइयों में उतरता है उतना ही पाता है मृत्यु नहीं है। मृत्यु सबसे बड़ा असत्य है। उससे बड़ा कोई भी असत्य नहीं है। लेकिन हम उसी से भयभीत हैं और उसी से बचने की कोशिश में संलग्न हैं। भाग रहे हैं, भाग रहे हैं कि मर न जाएं। इसीलिए हम धार्मिक आदमी नहीं हो पाते। धार्मिक आदमी वह है जो मरने के लिए तैयार है। जो कहता हैः मरना ही है तो मैं मर कर देख लेना चाहता हूं।
सुकरात मर रहा था। तो किसी ने उससे पूछा कि तुम घबड़ा नहीं गए हो, मौत करीब आ रही है! तो सुकरात ने कहा, दो बातें ही हो सकती हैं। या तो मैं मर ही जाऊंगा, कुछ भी न बचेगा। और अगर मर ही जाऊंगा, कुछ भी न बचेगा, फिर भय कैसा? क्योंकि भय के लिए बचना तो जरूरी है। फिर दुख कैसा? क्योंकि दुख के लिए भी मेरा होना जरूरी है। फिर डर कैसा? अगर मैं मर ही गया, कुछ भी न बचा, तो डर नहीं है। और अगर मैं बच ही गया और मरने में मैं न मरा, तो फिर तो डर का कोई सवाल नहीं है। जब बच ही जाऊंगा, तो डर कैसा? फिर जो मर गया वह मैं नहीं था जानूंगा और जो बच गया वही मैं हूं।
सुकरात ने कहा, दो ही बातें हैं। या तो मर ही जाऊंगा, तब डर का कोई उपाय
न रहा। और अगर बच ही गया, तब तो डर की कोई बात ही नहीं है। लेकिन हम? हम बहुत डरे हुए हैं, बहुत भयभीत हैं। इसलिए समाधि के पास हम नहीं पहुंच पाते हैं। समाधि के पास वही पहुंच सकता है जो मरने के लिए तैयार है। इसीलिए हम किसी की मृत्यु के बाद चबूतरा बनाते हैं तो उसे भी समाधि कहते हैं और ध्यान की आखिरी स्थिति को भी समाधि कहते हैं। कब्र को भी समाधि कहते हैं और ध्यान की आखिरी स्थिति को भी समाधि कहते हैं। दोनों में कुछ जोड़ है। जो आदमी जीते जी अपने को कब्र में डाल देता है वह समाधि को उपलब्ध हो जाता है। लेकिन जीते जी कब्र में डालना, जीते जी मरने की तैयारी दुरूह है।
मैंने सुना है, इजिप्त में एक आश्रम था। और उस आश्रम में आश्रम के नीचे ही मरघट था। जमीन को खोद कर नीचे मरघट बनाया था। हजारों वर्ष पुराना आश्रम था। मीलों तक नीचे जमीन खोद कर उन्होंने कब्रगाह बनाई हुई थी। जब कोई भिक्षु मर जाता, तो पत्थर उखाड़ कर, उस नीचे के मरघट में डाल कर चट्टान बंद कर देते थे।
एक बार एक भिक्षु मरा। लेकिन कुछ भूल हो गई। वह मरा नहीं था, सिर्फ बेहोश हुआ था। उसे मरघट में नीचे डाल दिया। चट्टान बंद हो गई। पांच-छह

घंटे बाद उस मौत की दुनिया में उसकी आंखें खुलीं, वह होश में आ गया। उसकी मुसीबत हम सोच सकते हैं! सोच लें कि हम उसकी जगह हैं। वहां लाशें ही लाशें हैं सड़ती हुई, दुर्गंध, हड्डियां, कीड़े-मकोड़े, अंधकार! और उस भिक्षु को पता है कि जब तक अब और कोई ऊपर न मरे, तब तक चट्टान का द्वार न खुलेगा। और उसे यह भी पता है कि अब वह कितना ही चिल्लाए... चिल्लाया, जानते हुए भी चिल्लाया कि आवाज ऊपर तक नहीं पहुंचेगी... क्योंकि आश्रम मील भर दूर है। और मरघट पर तभी आते हैं आश्रम के लोग जब कोई मरता है। और बड़ी चट्टान से द्वार बंद है। फिर भी, जानते हुए...
हम भी बहुत बार जानते हुए चिल्लाते हैं, जानते हुए कि आवाज नहीं पहुंचेगी। मंदिरों में लोग चिल्ला रहे हैं, जानते हुए कि आवाज कहीं भी नहीं पहुंचेगी। हम सब चिल्ला रहे हैं जानते हुए कि आवाज नहीं पहुंचेगी। आदमी जानते हुए भी चिल्लाए चला जाता है, जहां आशा नहीं है वहां भी आशा किए चला जाता है।
वह आदमी बहुत चिल्लाया, चिल्लाया, उसका गला लग गया, आवाज निकलनी बंद
हो गई। शायद हम सोचेंगे कि उस आदमी ने आत्महत्या कर ली होगी। लेकिन नहीं, उस आदमी ने आत्महत्या नहीं की। वह आदमी थोड़े-बहुत दिन नहीं, सात साल उस कब्र के भीतर जिंदा रहा। वह कैसे जिंदा रहा? उसने सड़ी हुई लाशों को खाना शुरू कर दिया। उसने कीड़े-मकोड़े, जो लाशों में पलते थे, उनको खाना शुरू कर दिया। मरघट की दीवालों से नालियों का जो पानी चूता था, उसे वह चाट कर पीने लगा। इस प्रतीक्षा में कि कभी न कभी तो कोई मरेगा ही। द्वार तो खुलेगा ही। आज नहीं कल, कल नहीं परसों। कब सूरज उगता, उसे पता न चलता; कब रात आती, उसे पता न चलता।
सात साल बाद कोई मरा, चट्टान उठाई गई, तो वह आदमी बाहर निकला। और वह खाली बाहर नहीं निकला। इजिप्त में रिवाज है कि मरने वाले आदमियों को नये कपड़े पहना दिए जाते और उनके साथ दो-चार कपड़े कीमती रख दिए जाते, कुछ पैसे- रुपये भी रख दिए जाते। तो उसने सब मुर्दों के कपड़े और पैसे इकट्ठे कर लिए थे, जब निकलेगा तो लेता चला जाएगा। तो वह एक बड़ी पोटली बांध कर कपड़े और एक बड़ी थैली में सब रुपये भर कर बाहर आया। उसे तो कोई पहचान ही नहीं सका, मरघट पर जो लोग आए थे वे तो घबड़ा कर भागने लगे कि वह कौन है! उसके बाल जमीन छूने लगे थे, उसकी आंखों की पलकें इतनी बड़ी हो गई थीं कि आंख नहीं खुलती थी। उसने कहा, भागते हो? पहचाने नहीं? मैं वही हूं जिसे तुम सात साल पहले नीचे डाल गए थे।
उन्होंने कहा, लेकिन तुम जिंदा कैसे रहे? अगर छह घंटे बाद होश में भी आ
गए थे तो बचे कैसे? तुमने आत्महत्या न कर ली! सात साल तुम इस मरघट में रहे कैसे?
उस आदमी ने कहा, मरना इतना आसान तो नहीं है! मैं भी सोचता था। मैं भी यही सोचता, अगर कोई और उस मरघट में गिरा होता तो मैं भी यही सोचता कि पागल, जीने की बजाय मर जाते! लेकिन अब मैं कह सकता हूंः मरना इतना आसान नहीं है। मैंने जीने की पूरी कोशिश की। और जीने के लिए मैंने जो भी किया है वह भी घबड़ाने वाला है। आज अगर फिर से सोचूं तो शायद न कर पाऊं।
हम भी सोचेंगे कि वह आदमी कैसा आदमी रहा होगा! लेकिन वह आदमी ठीक हमारे जैसा आदमी था। हम भी उसकी जगह होते तो यही करते। और जिसे हम जिंदगी कह रहे हैं, क्या वह जिंदगी उस मरघट से बहुत भिन्न है? और जिसे हम भोजन कह रहे हैं, क्या वह उस मरघट में किए गए भोजन से बहुत भिन्न है? और जिसे हम कपड़े और रुपये का इकट्ठा करना कह रहे हैं, वह भी क्या मुर्दों से छीने गए रुपये और कपड़े नहीं हैं?
बाप ब.ूढा हो गया हो, तो चाहे बच्चे कहें या न कहें, सोचते हैं कि विदा
हो जाए। वे मुर्दे के कपड़े और पैसे छीनने के लिए उत्सुक हैं। राष्ट्रपति को शुभकामनाएं भी देते हैं लोग। उपराष्ट्रपति जन्मदिन पर जाकर फूलमालाएं भी चढ़ाते हैं और मन में भगवान से जाने-अनजाने प्रार्थना भी करते हैंः कब तक टिके रहिएगा? क्योंकि वे विदा हों तो उनकी मरी हुई कुर्सी किसी को, कोई उस पर सवार हो जाए।
इसलिए दिल्ली में कोई मरता है, तो जो लोग चेहरे पर आंसू लिए हुए मरघट
की तरफ ले जाते मालूम पड़ते हैं, वे ही तैयारी भी कर रहे होते हैं उसी वक्त

कि कौन उसकी मरी हुई कुर्सी पर बैठ जाए। कहीं ऐसा न हो कि दूसरा बैठ जाए। बल्कि मरघट पर ले जाते वक्त भी इस बात की होड़ रहती है कि मुर्दे को सबसे पहले कौन हाथ दे रहा है, क्योंकि उसका कुर्सी पर कब्जा हो सकता है। मैंने सुना है कि गांधी मरे तो जिस टैंक पर चढ़ा कर उनको ले जाया गया था उस पर भी खड़े होने की प्रतियोगिता थी कि कौन-कौन नेता उस पर खड़े हो जाएं। क्योंकि दुनिया उनको देख ले कि वसीयतदार कौन हैं!
यह जिसको हम जिंदगी कहते हैं, यह भी एक बड़ा मरघट है, जिसमें क्यू है मरने वालों का। कोई अभी मरेगा, कोई थोड़ी देर बाद, कोई फिर थोड़ी देर बाद, कोई कल, कोई परसों, लेकिन सब मरेंगे। और इसमें जो मकान हैं हमारे पास, वे मुर्दों से छीने गए हैं, और जो कपड़े हैं वे भी, और जो धन है वह भी। और यहां भी हम जी रहे हैं बिना किसी आनंद को जाने, बिना किसी शांति को पाए, लेकिन सिर्फ एक आशा में कि शायद कल शांति मिले, कल आनंद मिले, कल कुछ मिल जाए। तो कल तक तो जीने की कोशिश करो। किसी भी भांति कल तक जी लो। कल शायद कुछ मिल जाए।
लेकिन मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि जो मरने के लिए तैयार नहीं है, उसे कभी कुछ न मिल सकेगा। और हम बहुत बार मरे हैं। लेकिन हम मरने से इतने भयभीत हैं कि मरने के बहुत पहले बेहोश हो जाते हैं। इसलिए हमें मृत्यु की कोई याद नहीं रह जाती। हम बहुत बार मरे हैं और बहुत बार जन्मे हैं, लेकिन हर बार मरने और जन्मने की क्रिया इतनी ज्यादा हमें डरा देती है कि हम बेहोशी में ही पैदा होते हैं और बेहोशी में ही मरते हैं। इसलिए उसकी मेमोरी, उसकी स्मृति नहीं बन पाती और गैप पड़ जाता है। इसलिए पिछले जन्म की भी स्मृति हमें नहीं रह जाती। पिछले जन्म की स्मृति न रह जाने का और कोई कारण नहीं है, पिछले जन्म की स्मृति न रह जाने का एक ही कारण है कि बीच में आई मृत्यु, और मृत्यु में हम इतने भयभीत हो गए कि बेहोश हो गए। और बेहोशी का जो अंतराल है, उसने स्मृति को दो हिस्सों में तोड़ दिया। पिछली स्मृति अलग टूट गई, यह स्मृति अलग टूट गई। इतना बड़ा बीच में गैप, अंतराल पड़ गया कि दोनों को जोड़ना मुश्किल है।
हां, कोई मरने की कला सीख जाए तो पिछले जन्म को स्मरण कर सकता है। क्योंकि तब फिर वह उस अंतराल को जोड़ सकता है। जन्मते भी हम बेहोश हैं। बहुत बार जन्मे हैं, लेकिन बेहोश जन्मे हैं। क्योंकि जन्म भी--यह जान कर हैरानी होगी--बच्चे को मृत्यु जैसा ही मालूम होता है। जब एक बच्चा मां के पेट से जन्मता है, तो उस बच्चे को मृत्यु जैसी ही प्रतीति होती है। वह इसीलिए मृत्यु जैसी प्रतीति होती है कि जिसे उसने नौ महीने तक जीवन समझा, वह अंत पर आ गया। जिसे उसने जीवन माना, वह अब समाप्त हो रहा है। और आगे के जीवन का तो उसे कुछ भी पता नहीं है। आगे तो भय है। मां के पेट का सारा आराम, सारी सुविधा, सारा सुख, सब छिन रहा है। और आगे का तो उसे पता नहीं है। उसकी दुनिया से वह उखाड़ा जा रहा है, अपरूट किया जा रहा है, सब जड़ें टूट जाएंगी। तो बच्चे को, जिसे हम जन्म कहते हैं, वह मृत्यु की तरह ही प्रतीत होता है। इसलिए बच्चा भी बेहोश ही जन्मता है, होश में नहीं होता। और जिसे हम मृत्यु कहते हैं वह भी जन्म है किसी और अर्थों में। लेकिन हम भी बेहोश मरते हैं। क्योंकि हमें लगता है कि जो था वह छूट रहा है, और जो आएगा वह तो अपरिचित है, आएगा भी, नहीं भी आएगा, पता नहीं क्या होगा?
हर मृत्यु जन्म है और हर जन्म मृत्यु है। इस जगत में न तो कुछ समाप्त होता और न कुछ शुरू होता है। जिसे हम शुरुआत कहते हैं, वह किसी चीज की समाप्ति है। और जिसे हम समाप्ति कहते हैं, वह किसी चीज की शुरुआत है। जिसे हम सांझ कहते हैं, वह दिन का अंत है और रात का प्रारंभ है। और जिसे हम सुबह कहते हैं, वह रात का अंत है और दिन का प्रारंभ है। और इस जगत में कुछ भी पूर्ण अंत को नहीं पहुंचता, और इस जगत में कुछ भी पहला प्रारंभ नहीं है। इस जगत में अंत है, प्रारंभ है; प्रारंभ है, अंत है। शुरुआत है, अंत है, शुरुआत है, अंत है। कोई चीज कहीं जाकर न समाप्त होती है और न कहीं शुरू होती है। इसलिए जीवन अनंत है। लेकिन मरने का डर बेहोश कर देता है। और मरने के डर के कारण ही हम समाधि में कभी प्रवेश नहीं कर पाते।
कितने लोग हैं जो मुझसे कहते हैं... कल ही एक मित्र कहते थेः आप ध्यान
की बात तो कहते हैं, लेकिन अभी समझ में नहीं आती, उतर भी नहीं पाते।

नहीं उतर पाएंगे। जब तक मन की बहुत गहराई में मरने की तैयारी न हो, तब
तक समाधि में नहीं उतरा जा सकता है। लेकिन जो लोग ध्यान करने आते हैं वे इसीलिए करने आते हैं कि शायद ध्यान भी मरने से बचने की एक तरकीब बन जाए। वे भी यह सोचते हैं कि शायद ध्यान के द्वारा, आत्मा अमर है, ऐसा पता चल जाए। चलेगा पता। लेकिन वह उसी को पता चलेगा जो मरने के लिए तैयार है। ध्यान
से चलेगा पता कि आत्मा अमर है, लेकिन उसे नहीं जो सिर्फ आत्मा की अमरता का पता लगाने चला आया है, उसे जो मरने के लिए तैयार है। मरने की तैयारी ही उसे उस जगह पहुंचा देती है जहां न मरने वाले का पता चलता है। इसलिए समाधि को कोई भी कभी उपलब्ध हुआ हो, तो समाधि के द्वार पर मृत्यु का बोध पहला चरण है। लेकिन हम मृत्यु के बोध को हटाए रहते हैं। हमने मरघट गांव के बाहर बनाए हैं इसीलिए कि वह रोज-रोज दिखाई न पड़े। होना तो चाहिए गांव के बीच में मरघट। जहां से हर बच्चा निकले, हर आदमी निकले, दिन में दो-चार बार उसे मृत्यु का ख्याल आ जाए। हमने गांव के बाहर बनाया है, दूर, सुरक्षित, कि पता न चले।
अभी एक गांव मैं गया था, वे बड़े होशियार लोग हैं। उन्होंने जो मरघट बनाया है, बहुत ही अच्छा बनाया है। वहां जाकर भी आपको मरघट का पता न चले। वहां भी उन्होंने बगीचे लगाए हैं, लाइब्रेरी बना दी है कि वहां जो लोग जाते हैं वे अखबार वहां भी पढ़ते रहते हैं। वे यहां भी अखबार पढ़ते रहते हैं, वे वहां भी अखबार पढ़ते रहते हैं। ऐसे तो अभी भी हम जो मरघट पर जाते हैं, तो हम बहुत दुनिया भर की बातें वहां करते रहते हैं मौत को छोड़ कर, वह मौत को छोड़ देते हैं। और सदा एक ख्याल बनाए रखते हैं कि सदा कोई और मरता है, मैं कभी नहीं मरता हूं! इसलिए हम दूसरों को छोड़ आते हैं--कि यह भी मर गया, यह भी मर गया। हम कभी नहीं मरते हैं। मैं कभी नहीं मरता हूं, दूसरे मरते हैं। और जब दस-पांच आदमियों को कोई आदमी मरघट पहुंचा आता है, तो और आश्वस्त हो जाता है कि मैं कैसे मरूंगा! मैं तो दूसरों को पहुंचाने का काम करता हूं। मैंने न मालूम कितने लोगों को पहुंचा दिया, अब मुझे कौन पहुंचाएगा!
हिटलर जैसे लोगों की मनःस्थिति में जो गहरे उतरे हैं, उनका ख्याल यह
है कि ऐसे लोग मृत्यु से डरे हुए लोग हैं, और दूसरे को मार कर आश्वासन पाते हैं कि मैंने तो इतने लोगों को मार डाला, मुझे कौन मार सकता है! चंगीज, या तैमूर, या हिटलर, या मुसोलिनी, या स्टैलिन, या माओ, ये सारे के सारे लोग मृत्यु से डरे हुए लोग हैं। और मृत्यु से बचने की प्रक्रिया में ही ये दूसरों को मार रहे हैं। क्योंकि जब एक आदमी लाख आदमी को मारे... अब अंदाज है कि हिटलर ने कोई सत्तर-अस्सी लाख लोगों को मारा; स्टैलिन ने कोई एक करोड़ लोगों को मारा... जब कोई एक आदमी एक करोड़ लोगों को मारे, तो एक अर्थ में परमात्मा जैसा हो जाता है। उसे लगता है कि एक करोड़ मिटा दिए, मुझे कौन मिटा सकता है! बहुत गहरे में उसे यह आश्वासन मिलता है कि मैं मिटाने वाला हूं, मैं मिटने वाला नहीं हूं।
परमात्मा जैसा अपने को अनुभव करने के दो ही रास्ते हैंः या तो हम मिटाने में उसकी होड़ कर लें, या बनाने में उसकी होड़ कर लें। तो बनाने में तो उसकी होड़ नहीं कर पाते हैं। फिर मिटाने में करना आसान पड़ जाता है। तो मिटा कर हम ईश्वर जैसे हो जाते हैं।
लेकिन है मृत्यु का भय! इसलिए हिटलर जैसा आदमी, जो इतने लोगों को मारता है, वह भी बहुत डरा हुआ आदमी है। वह रात कमरे में किसी को प्रवेश नहीं करने देगा। इसीलिए उसने शादी भी न की, कि कम से कम पत्नी को तो प्रवेश करने ही देना पड़ेगा। शादी नहीं की इसी डर से कि कहीं एक स्त्री को कमरे में आने देना पड़ेगा, और पता नहीं स्त्री धोखा दे जाए, जहर पिला दे, गोली मार दे, दुश्मन से मिल जाए। तो उसने विवाह नहीं किया।
हिटलर ने मरते वक्त विवाह किया। मरने के घंटे भर पहले। जब बर्लिन हार गया, और जब हिटलर जहां छिपा था उस तलघरे के सामने ही बम गिरने लगे, और दुश्मन के हवाई जहाज बर्लिन पर चक्कर मारने लगे, तब उसने अपने एक मित्र को कहा कि उस स्त्री को लिवा लाओ जो बारह वर्षों से विवाह की मेरे साथ प्रतीक्षा करती है। पर उन मित्रों ने कहा कि अब क्या अर्थ है? पर उसने कहा कि अब मैं निर्भय हूं, अब मरना निश्चित ही है। उसे ले आओ।

एक सोए हुए पादरी को जबरदस्ती उठा कर लाया गया। उस नीचे के तलघरे में चार-छह आदमियों के सामने हिटलर का विवाह हो गया। और विवाह के बाद जो उन्होंने सुहागरात का पहला काम किया वह था जहर पी लेना, दोनों ने, और दोनों जहर पी कर मर गए। लेकिन तब वह निश्चिंत था कि अब किसी को इतने निकट लिया जा सकता है, अब कोई डर नहीं है।
दुनिया में जितने बड़े हत्यारे हुए हैं, सब मृत्यु से डरे हुए लोग हैं। दूसरे की हत्या हम करते इसलिए हैं ताकि हम आश्वस्त हो सकें कि मैं नहीं मरूंगा, मेरी कोई हत्या नहीं कर सकता है। हमने जो व्यवस्था ईजाद की है जीवन की, उस व्यवस्था को अगर हम बहुत गौर से देखेंगे तो हम पाएंगे, हमने मृत्यु से भयभीत होकर... मृत्यु की बात नहीं करते हैं।
बचपन की मुझे याद है, जिस घटना की मैंने बात कही, क्योंकि उस घटना के बाद मेरे लिए मृत्यु सवाल न रहा।
एक संन्यासी गांव में आए हुए थे। और गांव में बड़ी चर्चा थी। मैं भी उन्हें सुनने गया था। वे आत्मा की अमरता की बातें कर रहे थे। और बात ही नहीं है करने को। मरे हुए और मरने से डरे हुए लोगों को सबसे प्रीतिकर यही लगता है कि बार-बार दोहराओ और समझाओ कि आत्मा अमर है। वे बड़े प्रफुल्लित होते हैं। इसलिए नहीं कि आत्मा अमर है, इसलिए कि उनको फिर एक आदमी ने आश्वासन दिया कि आत्मा अमर है, डर की कोई जरूरत नहीं है।
वे समझा रहे थे कि आत्मा अमर है। और मैं देख रहा था कि गांव के सब डरे हुए लोग वहां बैठ कर उन्हें बड़े आनंद से सुन रहे हैं। मैंने खड़े होकर उनसे पूछा कि स्वामी जी, आपके कब हैं इरादे मरने के? उन्होंने कहा, कैसी बेहूदी बात पूछते हो! यह कोई पूछने की बात है? और गांव के लोगों ने भी मुझे कहा कि यह कोई पूछने की बात है? यह पूछना अशिष्ट है। किसी आदमी से यह पूछना कि कब मरने के इरादे हैं। स्वामी तो बहुत नाराज हो गए।
मैंने कहा, मैं तो सोचता था कि वे कह रहे हैं, आत्मा अमर है, तो मरने की बात से नाराज न होंगे। लेकिन मरने के ख्याल से ही नाराज हो गए।
मैंने पूछा कि कब मरने के इरादे हैं? कब मरिएगा? और वे कहने लगे कि यह बात नहीं पूछनी चाहिए, इस तरह की भद्दी बात नहीं पूछनी चाहिए।
अगर आत्मा अमर है, तो मृत्यु फिर भद्दी कैसे रह जाती है? फिर मृत्यु रह
ही नहीं जाती। फिर मृत्यु की बात पूछनी अशोभन नहीं है।
हम मृत्यु की बात ही नहीं करते हैं, उसे हम टाले रखते हैं। वह आ भी जाए बीच में तो हम दूसरी बातें करते हैं। पड़ोस में कोई मर जाए तो हम हजार बात करते हैं, बस एक बात छोड़ देते हैं। हम कहते हैं बेचारा, हम उस पर दया खाते हैं। बिना इसकी फिकर किए कि जिस पर हम दया खा रहे हैं, वह घटना हम पर भी आज नहीं कल घट जाएगी। हम उसके बच्चों की बात करते हैं कि उनका क्या होगा? हम उसकी पत्नी की बात करते हैं--उसका क्या होगा? हम उसकी नौकरी की, पैसे की, धंधे की बात करते हैं कि वह सब क्या होगा? हम सब बात करते हैं, सिर्फ उस बीच के गोल घेरे को छोड़ जाते हैं, वह जो मृत्यु घटित हुई है, उसकी बात नहीं करते कि यह मृत्यु क्या है? उसको हम छोड़ जाते हैं। उसे हम बात के बाहर रखते हैं, उसे हम सदा किनारे रखते हैं।
अगर कोई हमारी जिंदगी में सबसे सुनिश्चित बात है तो वह मृत्यु है। बाकी तो सब अनिश्चित है। बाकी का कुछ भी तय नहीं है। एक बात तय है कि जिसे हम मृत्यु कहते हैं, वह घटेगी। सबसे सुनिश्चित बात पर सबसे कम चर्चा है।
आपने मृत्यु पर कोई किताब न देखी होगी। आत्मा की अमरता पर किताबें हैं।
मृत्यु पर किताब नहीं है। मृत्यु पर कोई बात ही नहीं करता, उसको हम बात के बाहर रखते हैं। क्योंकि वह बड़ा खतरनाक तथ्य है, वह कहीं दिखाई न पड़ जाए। लेकिन हम कितना ही बाहर रखें, मृत्यु बाहर नहीं रहती, वह एक दिन आ ही जाती है। हमारे सब उपाय तोड़ कर भीतर चली आती है। हमारे सब द्वार-दरवाजे बेकार सिद्ध होते हैं, वह भीतर आ जाती है। हमारे सब पहरे बेकार सिद्ध होते हैं, वह भीतर आ जाती है। हमारे मित्र, साथी-संबंधी, सब व्यर्थ सिद्ध होते हैं। जिनको हमने इकट्ठा किया था--कि वे हमारा अकेलापन मिटाएं, हमें लोनली न मालूम होने दें। पत्नी को लाया था मैं--कि मैं अकेला न रहूं; बेटे को पैदा किया था--कि मैं अकेला न रहूं; मित्र बनाए थे--कि मैं अकेला न रहूं। लेकिन जब मौत आती है तो मैं पाता हूं, बिल्कुल सब अकेला रह गया हूं। और जिन्हें

मैंने सोचा था, वे रो रहे हैं मेरे लिए, लेकिन मेरा साथ देने को तो कोई भी तैयार नहीं है। वे रो रहे हैं मेरे लिए कि बेचारा! वे दुखी हो रहे हैं। लेकिन वे दुखी भी शायद मेरे लिए नहीं हो रहे, वे दुखी भी सिर्फ इसलिए हो रहे हैं कि वे अकेले हो गए। और जल्दी ही वे इंतजाम करेंगे कि उनका अकेलापन मिट जाए, वे फिर भरे-पूरे हो जाएं।
अकेलेपन से बचने के लिए हमने बनाया है समाज, बनाए हैं दल, बनाई हैं संस्थाएं, बनाए हैं संगठन, बनाए हैं राष्ट्र, अकेले से बचने के लिए बनाई हैं जातियां--हिंदू और मुसलमान, जैन और ईसाई, बौद्ध और पारसी। हमने, अकेला न रह जाऊं मैं, तो हमने भीड़ इकट्ठी की है।
लेकिन क्या फर्क पड़ता है? हम अकेले हैं! और हमारा सब इंतजाम झूठा है।
और सब हमारा इंतजाम डिसेप्टिव है, धोखे का है, सच्चा नहीं है। और मौत हमारे सब इंतजाम को एक क्षण में व्यर्थ कर देती है। और सब अकेला रह जाता है। मौत के इस सत्य को पहचानने की जरूरत है। और मौत के इस सत्य के प्रति भयभीत होने की जरूरत नहीं है।
फिर भय का कोई प्रयोजन ही नहीं है। क्योंकि जैसा सुकरात ने कहा ठीक ही कहा, कि अगर मरूंगा बिल्कुल तो मर ही जाऊंगा, फिर बात ही क्या करनी है? और अगर नहीं मरूंगा तो नहीं ही मरूंगा, फिर भी क्या बात करनी है?
हमारी व्यवस्था मौत से बचने की हमें ध्यान के करीब नहीं पहुंचने देती, समाधि के करीब नहीं पहुंचने देती। इसलिए हमने ध्यान और समाधि से बचने के लिए दूसरी धार्मिक क्रियाएं ईजाद की हैं। जब कि समाधि ही धर्म का मूल आधार है, बाकी सब क्रियाएं धोखा हैं।
समाधि से बचने के लिए हमने प्रार्थना ईजाद की है। समाधि से बचने के लिए हमने जप-तप ईजाद किया है। समाधि से बचने के लिए हमने मंत्र-तंत्र, न मालूम क्या-क्या ईजाद किया है। लेकिन समाधि से बचने के लिए।
धर्म का जो जाल हमें चारों तरफ दिखाई पड़ता है वह रिचुअल है, क्रियाकांड है। वह हमें मरने की दिशा में गति नहीं देता, वह हमें जीने का सहारा देता है। वह हमसे कहता है, घबड़ाओ मत! आश्वासन देता है।
धर्म का कोई भी आश्वासन नहीं है। धर्म तो कहता हैः आओ, मिटो और मर जाओ! लेकिन जैसे ही कोई मरने को पूरी तरह राजी होकर जाता है, वह पाता है कि कुछ है, जो कि मरता ही नहीं। इस कुछ को जानते हुए, जागते हुए पहचान लेना जरूरी है। फिर कभी मृत्यु नहीं है। फिर मरेंगे हम होश से। और जो आदमी एक बार होश से मर गया, उसकी सारी जिंदगी का अर्थ, उसके जन्मों की व्यवस्था, उसकी सारी यात्रा बदल जाती है।
लेकिन होश से मरने के लिए, कांशस डेथ के पहले, हमें जीते जी मरने का कुछ अनुभव करना पड़ेगा कि हम जीते जी मरने की किसी दिशा में उतर जाएं। हम जीते जी मर जाएं।
जीसस का एक बहुत कीमती वचन है। कहा है जीसस नेः जो अपने को बचाएगा वह मिट जाएगा। और जो अपने को मिटाने को राजी है वह बचा लिया जाता है।
ठीक ही कहा है, एकदम ठीक कहा है। शायद जीसस का सूली पर लटकना उसका ही प्रतीक है--मिटने का, पूरी तरह मिटने का।
लेकिन जीसस तो सूली पर लटके, उनके अनुयायियों ने बड़ी तरकीब निकाली, वे
एक छोटी सी सूली बना कर गले में लटकाए हुए हैं। अब सूली पर गला लटके, यह तो समझ में आता है; गले में सूली लटके, यह बिल्कुल समझ में नहीं आता। सारी दुनिया में, जिनको हम धर्म-अनुयायी कहते हैं, वे इसी तरह के डिसेप्शन पैदा कर लेते हैं। बात वैसी ही दिखाई पड़ती है, जीसस भी सूली पर लटके हैं, जीसस का पादरी भी सूली लटकाए हुए है गले में। सोने की सूली बना ली है छोटी, उसको गले में लटकाए हुए है।
सोने की कहीं सूलियां होती हैं? और सूलियां कहीं गले में लटका कर चलने
से कुछ मतलब है?
लेकिन सूली प्रतीक है किसी और बात का--मिटने की तैयारी का। जीसस भी आखिरी क्षण में बहुत घबड़ा गए। और मेरी दृष्टि में वही मोमेंट, वही क्षण उनकी जिंदगी का सबसे कीमती क्षण है। जब उन्हें सूली पर लटकाया गया और हाथ में कीले ठोंके गए, तो उनके मुंह से आवाज निकली कि हे परमात्मा, यह तू क्या कर रहा है? यह तू कर क्या रहा है? यह मेरे साथ क्या हो रहा है? अत्यंत चिंता

और तनाव से भरे हुए उनके प्राणों से आवाज निकली कि हे परमात्मा, तू मुझे यह क्या दिखला रहा है?
शिकायत थी! शिकायत खबर देती है कि अभी जीसस को पता नहीं चला था। लेकिन
एक ही क्षण में उनको समझ में आ गई बात, और वे हंसने लगे। और उन्होंने कहा, जो तेरी मर्जी, मैं राजी हूं।
यह एक क्षण ही जीसस के जीवन में क्रांति का क्षण है। जिस क्षण उन्होंने कहा, हे परमात्मा, यह क्या दिखला रहा है? उस वक्त मृत्यु के संबंध में शिकायत है। उस समय तक वे बढ़ई के एक बेटे जीसस थे। और एक क्षण बाद जब उन्होंने कहा, तेरी मर्जी, जो तू करे, मैं राजी हूं। बस वे जीसस न रहे, क्राइस्ट हो गए। वे एक साधारण आदमी के बेटे न रहे, परमात्मा के बेटे हो गए, मरने को राजी हो गए थे। एक क्षण में यह बात घटी और वह क्षण समाधि का क्षण बन गया--जैसे ही उन्होंने कहा, राजी हूं।
जो आदमी अपने भीतर कह सकता है कि मरने को राजी हूं, उसकी जिंदगी में समाधि का क्षण आ जाता है। और जो आदमी कहता हैः मरने का? मर नहीं सकता। मैं तो इसीलिए ध्यान वगैरह खोज रहा हूं कि मरना न पड़े। आत्मा की अमरता का पता चल जाए, परमात्मा से मिलना हो जाए। और गारंटी पक्की हो कि कभी न मरूंगा। अगर यह शरीर भी मरेगा तो आत्मा नहीं मरेगी। कुछ भी हो जाए लेकिन मैं न मरूं, इसका मुझे पक्का करना है। ऐसा आदमी अगर ध्यान की खोज में जाएगा, तो ध्यान में जा ही नहीं सकता है।
जो आदमी मरने को राजी है उसे मैं संन्यासी कहता हूं। वह कपड़े बदलता है
कि नहीं बदलता, यह बेमानी बात है। इसीलिए हम संन्यासी का नाम बदल देते हैं। लेकिन नाम बदलने से कुछ भी नहीं होता, क्योंकि वह आदमी वही का वही रह जाता है। नाम बदलते हैं इसीलिए कि हम मानते हैं कि पुराना आदमी मर गया, यह दूसरा आदमी है। लेकिन पुराना आदमी समाधि के बिना मर नहीं सकता। यह आदमी वही का वही है।
एक युवक मेरे पास अभी आया और उसने कहा कि मैं संन्यास लेना चाहता हूं, आपकी क्या सलाह है?
मैंने कहा, संन्यास कभी किसी ने लिया है? और अगर लिया होगा तो झूठा होगा। संन्यास लिया नहीं जा सकता। क्योंकि वह जो लेने वाला है, वह मर जाए, तो संन्यास घटित होता है। वह जो लेने वाला है, जो कहता है मैं संन्यास ले रहा हूं, उसकी मृत्यु ही तो संन्यास बनती है। तो मैंने उससे कहा, जब तक संन्यास लेने जैसा लगे, तब तक लेना ही मत। लेकिन जिस दिन तुम पाओ कि वह आदमी मर ही गया जो संन्यास लेता फिरता था, उस दिन तुम संन्यासी हो जाओगे। और मैंने कहा कि जब तक किसी से पूछना पड़े, सलाह लेनी पड़े, तब तक तो लेना ही मत। क्योंकि दूसरे की सलाह से लिया हुआ सदा झूठा हो जाता है। जिस दिन तुम पाओ कि सारी दुनिया भी कहे कि संन्यास मत लो, लेकिन तुम पाओ कि अब लेने का सवाल ही नहीं, मैं संन्यासी हो गया। तभी कुछ...
पुराने दिनों में दीक्षा देते थे वे... जैसी मैंने जीसस की बात कही, वैसी ही सारी दुनिया में बात हो गई है... दीक्षा देते थे संन्यासी को तो वे उसे मरघट पर ले जाते थे। उसे चिता पर सुलाते थे, चिता में आग लगाते थे। वह प्रतीक था। फिर जलती हुई चिता से उसे उठाते थे और कहते थेः वह आदमी मर गया जो तुम थे, अब एक दूसरे आदमी का जन्म हुआ है।
मुर्दे का सिर घोट देते हैं न, इसीलिए संन्यासी का सिर घोट देते थे, कि
यह आदमी मर गया। फिर उसका नाम बदल देते थे, क्योंकि वह आदमी तो मर ही गया-- जो किसी का बेटा था, किसी का पति था, किसी का बाप था, किसी का भाई था--वह मर गया। इसलिए उसे दूसरा नाम दे देते थे।
अब भी वही हो रहा है। लेकिन अब वह सब झूठा है। और किसी लकड़ी की चिता पर अगर लिटा कर हम किसी को उठा लेंगे, तो क्या भीतर का आदमी मर जाएगा? कैसे मर जाएगा? और कपड़े बदल देंगे, और नाम बदल देंगे, तो क्या भीतर का आदमी मर जाएगा?
नहीं, चिता का अर्थ है--समाधि। जो व्यक्ति समाधि में प्रविष्ट होता है, फिर वह वही लौटता ही नहीं जो गया था, दूसरा ही आदमी लौटता है। वह बिल्कुल और ही आदमी होता है। मरने की तैयारी संन्यास है। और संन्यास समाधि से फलित होता है। और मेरा मानना है कि कोई व्यक्ति कहीं भी समाधि को

उपलब्ध हो जाए, वह संन्यस्त हो जाएगा। संन्यस्त का मतलब यह नहीं कि वह घर छोड़ कर भाग जाएगा। क्योंकि घर छोड़ कर तो वे ही केवल भागते हैं जिनके लिए घर बहुत मूल्यवान है; पत्नी छोड़ कर वे ही भागते हैं जो स्त्री-लोलुप हैं; धन छोड़ कर वे ही भागते हैं जो लोभी हैं। लेकिन जिनके लिए सब जैसा है वैसा स्वीकार हो गया, वे कहीं भी नहीं भागते हैं, वे जहां हैं, हैं।
मैंने सुना है, एक गांव में एक फकीर है। उस गांव का राजा रात को निकलता
है कभी, तो बार-बार उस फकीर को देखता है कि नीम के वृक्ष के नीचे वह सर्दी की रातों में ठिठुरता रहता है। फिर उसने गांव में पता लगाया। उसके वजीरों ने कहा, वह साधारण आदमी नहीं है, बहुत अदभुत व्यक्ति है; कहीं पहुंच गया, कुछ पा लिया, कुछ हो गया है उसकी जिंदगी में। तो सम्राट ने एक रात उससे जाकर कहा कि आप यहां न पड़े रहें, मेरे मन में बड़ी श्रद्धा का उदय हुआ है, चलें आप राजमहल में, वहीं निवास करें।
राजा ने सोचा--शायद न भी सोचा हो, लेकिन अचेतन में कहीं छाया रही होगी--
कि संन्यासी तो फौरन कहेगा, राजमहल? मैं नहीं जा सकता हूं। हम फकीर हैं, हम झोपड़ों में सड़क के किनारे पड़े रहते हैं। राजमहल हमारे लिए नहीं है। लेकिन सम्राट यह कह ही रहा था कि तभी वह फकीर उचका और राजा के घोड़े पर सवार हो गया। और उसने कहा, चलिए, किस तरफ चलें?
राजा को बड़ी मुश्किल हो गई। श्रद्धा एकदम समाप्त हो गई। उसने कहा कि मैंने कहा भी नहीं और यह आदमी राजी हो गया! यह कैसा संन्यासी है? लेकिन अपने ही शब्द वापस लेने में भी तो देर लग जाती है। अब एकदम से कैसे शब्द वापस ले ले! मन तो वहीं खट्टा हो गया। क्योंकि भोगी जो हैं वे सिर्फ त्यागियों को पूज सकते हैं। भोगियों की पूजा ने ही त्यागियों को पैदा किया हुआ है।
इसलिए जिसकी धन से जितनी ज्यादा लोलुपता होगी, वह उस आदमी के पास जाकर पैर छुएगा जिसने धन को लात मार दी होगी। वह इसलिए पैर छुएगा कि हां, यह है कुछ आदमी। यह पहुंच गया वहां जहां मुझे भी पहुंचना चाहिए। जो आदमी स्त्रियों के पीछे दीवाना होगा, वह ब्रह्मचारी के जाकर पैर पड़ेगा। वह कहेगा कि यह है आदमी। हम अपने से उलटे को पूजते हैं। और अगर पूजा लेनी हो तो आम लोग जैसे हैं उससे उलटा होना जरूरी हो जाता है। अगर वे पैर से चलते हैं तो आप शीर्षासन करिए, फिर पूजा मिलनी शुरू हो जाती है। पूजा सिर्फ उलटे को मिलती है। और जो उलटा है, वह बदला हुआ नहीं है। सिर के बल खड़े हो जाइए चाहे पैर के बल, आदमी आप वही हैं। आदमी नहीं बदल जाता सिर के बल खड़े होने से।
राजा बहुत मुश्किल में पड़ गया, लेकिन निमंत्रण दिया था तो फकीर को घर
ले गया। अच्छे से अच्छा महल था, फकीर को ठहरा दिया। लेकिन श्रद्धा चली गई। क्योंकि श्रद्धा भोगी की त्यागी में हो सकती है। और धीरे-धीरे श्रद्धा मिटती गई। क्योंकि जो भी खाने को कहा, उसने खाना ले लिया; जहां भी सोने को कहा, वह सो गया--मखमली गद्दे थे तो स्वीकार कर लिए। तब तो राजा ने कहा, बात सब खराब हो गई। मैं बड़ी गलती में पड़ गया। मैं किस तरह के आदमी को ले आया! छह महीने बाद राजा ने एक दिन जाकर उस फकीर को कहा कि एक सवाल मेरे मन में उठा है, पूछ लूं? वह सवाल यह है कि मुझमें और आपमें अब फर्क क्या है? उस संन्यासी ने कहा, तुम छह महीने बाद पूछ रहे हो, सवाल तो उसी रात उठ गया था।
उसने कहा, क्या मतलब?
संन्यासी ने कहा, जब मैं घोड़े पर सवार हुआ था, तभी सवाल उठ गया था। लेकिन बड़े कमजोर आदमी हो, पूछने में भी छह महीने लगा दिए!
उस राजा ने कहा, शायद आप ठीक कहते हैं, सवाल तो उसी वक्त उठ गया था।
तो उसी वक्त पूछ लेना था, उस फकीर ने कहा, कैसे कमजोर आदमी हो!
फिर राजा ने कहा, अब आज तो बता दें, कि अब मुझमें और आपमें फर्क क्या है?
फकीर ने कहा, सच में ही फर्क जानना है, तो चलो उसी जगह चलें जहां से यह सवाल उठा था। वहीं जवाब दे दूंगा।
वे गए गांव के बाहर, उस झाड़ के नीचे, फिर वे चलते ही गए। राजा ने कहा, वह झाड़ भी निकल गया, अब आप जवाब दे दें।

उस फकीर ने कहा, थोड़े और आगे, थोड़े और आगे...
फिर वे गांव की सीमा-रेखा पर पहुंच गए, जहां राजा का राज्य समाप्त हो जाता था। नदी थी। फकीर ने कहा, नदी भी पार कर लें।
उस राजा ने कहा, लेकिन मतलब क्या है? अब जवाब दीजिए, दोपहर हो गई, धूप सिर पर चढ़ गई।
उस फकीर ने कहा, जवाब मेरा यही है कि अब मैं तो आगे जाता हूं, तुम भी साथ चलते हो?
उस राजा ने कहा, मैं कैसे जा सकता हूं? मेरी पत्नी, मेरे बच्चे, मेरा राज्य!
उस फकीर ने कहा, तो मैं तो जाता हूं। अगर फर्क दिखाई पड़े तो देख लेना। तुम्हारे महल में मैं था, लेकिन तुम्हारा महल मेरे भीतर न था। तुम सिर्फ महल में नहीं हो, महल भी तुम्हारे भीतर है। अब कहां है महल तुम्हारा? कहां है पत्नी? कहां हैं तुम्हारे बच्चे? लेकिन तुम कहते हो कि मुझे लौटना पड़ेगा--मेरी पत्नी, मेरे बच्चे, मेरा महल! मेरा कुछ भी नहीं है। मैं तुम्हारे महल में मेहमान था, मैं तुम्हारे महल का मालिक न था। महल के भीतर था मैं, लेकिन महल मेरे भीतर न था। अच्छा मैं जाऊं?
राजा के मन में श्रद्धा का फिर उदय हुआ। श्रद्धा के उदय होने में भी देर नहीं लगती, जाने में भी देर नहीं लगती। वह एकदम संन्यासी के पैर पकड़ लिया और उसने कहा, महाराज, कहां मुझे छोड़ कर जाते हैं! वापस चलें।
उसने कहा, मैं फिर घोड़े पर सवार हो सकता हूं, लेकिन श्रद्धा का अंत हो जाएगा। अब तुम मुझे जाने दो। मुझे कोई कठिनाई नहीं है, मैं लौट सकता हूं। लेकिन तुम बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे। छह महीने मैं तो बड़े मजे में सोया, तुम बड़ी मुसीबत में रहे। फिर सवाल उठ जाएगा, अगर मैं लौटा। तो अब मत लौटाओ।
मैं तो लौट सकता हूं, क्योंकि मेरे लिए यह दिशा और वह दिशा, सब बराबर है। इधर जाऊं कि इधर जाऊं, कि कहीं न जाऊं, कोई फर्क नहीं पड़ता है। लेकिन तुम मुसीबत में पड़ जाओगे।
इस आदमी को मैं संन्यासी कहता हूं। जो संसार से भयभीत है वह संन्यासी नहीं है। लेकिन जो संसार में ऐसे रहने लगा जैसे मेहमान है, अतिथि है; जो संसार में ऐसे रहने लगा कि संसार चारों तरफ है, लेकिन उसके भीतर नहीं है; वह आदमी संन्यस्त है।
लेकिन संन्यस्त व्यक्ति समाधि से गुजरे बिना कोई भी नहीं हो सकता। संन्यस्त होने का मतलब हैः बिना मरे कोई संन्यस्त नहीं हो सकता। जीते जी जो मर जाता है, जीते जी जो मरने की कला सीख लेता है। और एक बार समाधि से कोई गुजर जाए, तो प्रतिपल मरता है और प्रतिपल नये का जन्म होता है। फिर ऐसा नहीं है कि एक दफा मैं मर गया और दूसरा हो गया। नहीं, प्रतिपल जो पुराना था वह मर जाता है और नया उभरता रहता है। प्रतिपल मृत्यु है, प्रतिपल जीवन है, प्रतिपल पुनर्जीवन है। प्रतिपल मरता है पुराना, नया जन्म लेता है। और जब कोई व्यक्ति ऐसी स्थिति में हो जाता है कि उसके ऊपर अतीत का कोई बोझ नहीं है, अतीत का सब मर जाता है; और भविष्य की कोई चिंता नहीं है, क्योंकि जो नहीं आया उसकी चिंता कैसी; जिसके ऊपर सिर्फ वर्तमान के जीवन की पुलक रह जाती है, वह व्यक्ति परमात्मा के पूर्ण आनंद को उपलब्ध हो पाता है। और वह जान पाता है कि क्या है मुक्ति, क्या है मोक्ष, क्या है जीवन का अर्थ, क्या है जीवन की सुगंध, क्या है जीवन की ज्योति।
लेकिन तैरना सीखना हो तो पानी में उतरना पड़े। और अगर अमृत को जानना हो
तो मृत्यु में जाना पड़े। जैसे हम काले तख्ते पर सफेद खड़िया से लिखते हैं। सफेद दीवाल पर भी लिख सकते हैं, दिखाई तो नहीं पड़ेगा, लिख सकते हैं। दिखाई तो तभी पड़ेगा जब काले तख्ते पर हम सफेद खड़िया से लिखें, उभर कर दिखाई पड़ेगा। दिन में भी तारे होते हैं आकाश में, दिखाई नहीं पड़ते। मिट नहीं जाते हैं, दिन में भी होते हैं, लेकिन दिखाई नहीं पड़ते। रात दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि काली चादर फैल जाती है, उसमें तारे फिर चमक कर दिखाई पड़ते हैं। अमावस की रात जैसे तारे दिखाई पड़ते हैं वैसे कभी भी दिखाई नहीं पड़ते। जितनी काली रात, उतना तारा चमक कर दिखाई पड़ता है।
जो आदमी जितनी गहरी मृत्यु में से गुजरता है, उतना ही अमृत का तारा उसे चमक कर दिखाई पड़ने लगता है। गहरी मृत्यु की चादर घेर लेती है सब तरफ

से, फिर बीच में वही दीया दिखाई पड़ता रह जाता है जो अमर है, जो नहीं मिटता है, नहीं मिट सकता है। उपाय नहीं मिटने का, मार्ग नहीं मिटने का, द्वार नहीं मिटने का। अमृत को जानना हो तो मृत्यु को जानना जरूरी है।
यह बात उलटी मालूम पड़ेगी। यह बात उलटी मालूम पड़ेगी, लेकिन बीज से अगर
हम कहें कि अगर वृक्ष बनना है तो मिटना जरूरी है, बीज मिटे तो वृक्ष बनता है। ऐसे ही, अगर हम मिटें, तो अमृत का पौधा हमारे भीतर खिलना शुरू हो जाता है। अनूठी है सुगंध उसकी, अनूठा है संगीत। लेकिन हम अभागे उससे वंचित रह जाते हैं, क्योंकि हम उससे ही डरे रह जाते हैं जो द्वार है, इसलिए भवन में कभी प्रवेश नहीं होता।
अगर मंदिर में जाना हो परमात्मा के, तो उसके द्वार का नाम मृत्यु है। इसलिए हम उस मंदिर को ही छोड़ देते हैं, हम अपना ही एक मंदिर मोहल्ले में बना लेते हैं। और एक अपना ही बनाया हुआ, गृह-उद्योग से, होम-मेड भगवान वहां खड़ा कर देते हैं। अपना ही दरवाजा बना लेते हैं, अपना ही मंदिर बना लेते हैं, अपनी ही चाबी, अपना ही सब कुछ। मंदिर में भी प्रवेश कर जाते हैं, और वही के वही वापस लौट आते हैं जो भीतर गए थे।
नहीं, परमात्मा का मंदिर कहीं और है, जो हमारे बनाने से नहीं बनता। उसका द्वार कुछ और है। जिससे हम भयभीत हैं, वही उसका द्वार है।
तो सुबह तो मैं रोज बात करूंगा उसके द्वार के और चरणों की। आपके जो भी प्रश्न हों, वे लिख कर दे देंगे, उन पर बात करता रहूंगा। और रात्रि सिर्फ उनको निमंत्रण है, जो उस द्वार में प्रवेश करने का साहस जुटा पाते हैं। तो दिन भर आप सोच लेना, लगे कि हां, है हिम्मत कि थोड़ा मर कर भी देखें,
तो ही आना, अन्यथा नहीं आना। कमजोर के लिए वह रास्ता नहीं है। हालांकि कोई भी इतना कमजोर नहीं है। लेकिन हम चाहें तो अपने को कमजोर बना सकते हैं, बहुत भयभीत हो सकते हैं, और नष्ट हो सकते हैं।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

समाधि के द्वार पर
दूसरा प्रवचन

समाधि के तीन चरण

फूल किसी से पूछते नहीं--कैसे खिलें। तारे किसी से पूछते नहीं--कैसे जलें। आदमी को पूछना पड़ता है कि कैसे वह वही हो जाए, जो होने को पैदा हुआ है। सहज तो होना चाहिए परमात्मा में होना। लेकिन आदमी कुछ अदभुत है, जिसमें होना चाहिए उससे चूक जाता है और जहां नहीं होना चाहिए वहां हो जाता है। कहीं कोई भूल है। और भूल भी बहुत सीधी हैः आदमी होने को स्वतंत्र है, इसलिए भटकने को भी स्वतंत्र है। शायद यह भी हो सकता है कि बिना भटके पता ही न चले। बिना भटके पता ही न चले कि क्या है हमारे भीतर। शायद भटकना भी मनुष्य की प्रौढ़ता का हिस्सा हो। मैं एक छोटी सी कहानी से समझाऊं। फिर हम समाधि के प्रयोग के लिए बैठें।
एक आदमी था, बहुत धन था उसके पास, लेकिन शांति न थी। जैसा कि अक्सर होता है। धन की तलाश करता है आदमी कि शांति मिलेगी। धन तो मिल जाता है, पर शांति जितनी दूर थी, शायद उससे भी ज्यादा दूर हो जाती है। सब पा लिया था, लेकिन आनंद की कोई खबर न मिली थी। अब वह बूढ़ा होने आ गया था। तो उसने बहुत से लाखों-करोड़ों के हीरे-जवाहरात अपने घोड़े पर ले लिए और खोजने निकल पड़ा। खोजने नहीं, कहना चाहिए, आनंद को खरीदने निकल पड़ा। जो आनंद दे दे उसे ही वे सारे हीरे-जवाहरात दे देना चाहता था।
बहुत लोगों के पास गया, जहां-जहां खबर सुनी वहां-वहां गया, लेकिन किसी
को आनंद की कोई खबर न थी। लोगों ने आनंद की बातें तो कीं। लेकिन उसने कहा, बात नहीं, मुझे आनंद चाहिए। और मैं सब कुछ देने को तैयार हूं। लेकिन कई जगह उसे लोगों ने खबर दी कि तुम कुछ ऐसा काम करने निकले हो कि सिर्फ एक फकीर है फलां-फलां गांव में, अगर वह कर दे तो कर दे, और कोई न कर पाए।
फिर आखिर वह उस गांव में भी पहुंच गया। सांझ का समय था, अमावस की रात थी, सूरज ढल गया था। गांव के बाहर ही एक वृक्ष के नीचे वह फकीर मिल गया। उस अमीर आदमी ने घोड़े से उतर कर वह थैली उस फकीर के पैरों के पास पटक दी और कहा, करोड़ों रुपये के हीरे-जवाहरात हैं, मुझे आनंद चाहिए! एक झलक मिल जाए, मैं सब देने को राजी हूं!
उस फकीर ने कहा, पक्का इरादा करके आए हो?
उस आदमी ने कहा, पक्का? महीनों से घूम रहा हूं, और उदास हो गया हूं, तुम
पर ही आशा टिकी है!
उस फकीर ने कहा, सच में ही आनंद चाहिए? बहुत दुखी हो?
उस आदमी ने कहा, दुख का कोई हिसाब नहीं, आनंद की कोई किरण ही नहीं मिलती।
यह बात ही चलती थी कि अचानक उस अमीर ने देखा कि यह क्या हुआ! उस फकीर ने
वह झोली उठाई और भाग खड़ा हुआ!
एक क्षण तो अमीर सकते में आ गया। अमीर सिर्फ उन फकीरों पर विश्वास करता है जो पैसे न छुएं। इसलिए अमीर उनकी पूजा करता है जो पैसे से बिल्कुल दूर रहें। क्योंकि अमीर उनसे आश्वस्त रहता है। इनसे कोई खतरा नहीं है। यह फकीर कैसा कि झोले को लेकर ही भाग गया? एक क्षण तो उसकी समझ में भी न आया। फिर वह चिल्लाया कि मैं लुट गया! मैं मर गया! मेरी सारी जिंदगी की कमाई लिए जा रहे हो! तुम चोर हो। तुम कैसे ज्ञानी हो? और पीछे भागा। क्योंकि अंधेरी रात थी, और सन्नाटा था, और गांव के बाहर थे। लेकिन फकीर खुद ही गांव में चला गया भागता हुआ। और अमीर पीछे गया। गली-गली में फकीर भागने लगा और अमीर पीछे चिल्लाने लगा कि पकड़ो! चोर है, बेईमान है! और मैं समझा था कि ज्ञानी है। मैं लुट गया, मैं मर गया। मैं बहुत दुखी हो गया हूं, मेरा सब छिन गया। गांव के लोग भी सम्मिलित हो लिए। गांव के लोग भी भागने लगे। लेकिन फकीर के रास्ते जाने-माने थे और अमीर रास्ते जानता न था। पराया गांव था। इसलिए फकीर ने बहुत चक्कर दिए। फिर आखिर फकीर उसी झाड़ के पास वापस लौट आया। झोले को पटक दिया जहां से उठाया था वहीं और झाड़ के पीछे अंधेरे में खड़ा हो गया।

अमीर आया पीछे हांफता हुआ, भागता हुआ, चिल्लाता हुआ--लुट गया! मर गया!
हे भगवान, मेरा सब छिन गया! झोले को देखा, उठा लिया, छाती से लगा लिया। उस अमीर की आंखों में उस समय आनंद की झलक थी। फकीर बाहर निकला और उसने कहा, मिला कुछ आनंद? यह भी एक तरकीब है आनंद को पाने की।
उस अमीर ने कहा, बड़ी शांति मिली, बड़ा आनंद! इतना सुखी मैं कभी भी न था। लेकिन यह थैली इसके पास पहले भी थी। पर यह कहता है, इतना सुखी मैं पहले कभी न था। और कहता है, बड़ी शांति मिली। और यह थैली पूरी की पूरी इसके पास थी घड़ी भर पहले भी। इस घड़ी भर में क्या हो गया?
इस घड़ी भर में इसने खोया। जब तक हम खो न दें उसे जो हमारे पास है, हम उसे पा नहीं सकते। जब तक हम खो न दें उसे जो हमारे भीतर है, तब तक हम उसे पहचान नहीं सकते। शायद इसीलिए मनुष्य को खोना पड़ता है स्वयं को, ताकि वह पा सके। हम सबने खो दिया है। हम उस फकीर और उस अमीर की कहानी में उस जगह हैं, जहां थैली फकीर ले भागा है। भला फकीर था, थैली पटक गया। हमारा मन भी ले भागा है सब कुछ। पता नहीं पटकेगा, नहीं पटकेगा। लेकिन पटक सकता है। थोड़ी तैयारी हमें दिखानी पड़े।
उस फकीर ने थैली कब पटकी? जब अमीर और दौड़ने की हिम्मत छोड़ दिया। जब अमीर बिल्कुल थक गया, तब उस फकीर ने झोली पटक दी। अगर हम भी बिल्कुल थक गए हों, तो वह हमारा मन झोली पटक सकता है। और हम उसे उपलब्ध हो सकते हैं, जो संपदा है, समाधि है; जो सत्य है, जो परमात्मा है। और जिस दिन हम उसे पा लेंगे, उस दिन कहेंगे, बहुत आनंद मिला। और साथ ही यह भी कहेंगे, बड़ी आश्चर्य की बात है लेकिन, जो मिला है यह सदा से मेरा ही था! लेकिन मुझे कभी पता न था।
समाधि उसकी खोज है जो हमें मिला ही हुआ है। समाधि पुनर्स्मरण है, रिमेंबरिंग है, याद है उसकी जो हमारा ही है। लेकिन यह खो देना भी जरूरी है। क्या करें इस समाधि को लाने के लिए? बहुत कुछ नहीं किया जा सकता, इतना
ही कर सकते हैं कि अपने को रिसेप्टिव बना लें, ग्राहक बना लें, अपने को खुला छोड़ दें। और अगर आता हो सत्य तो आ जाए, और परमात्मा अगर आता हो तो आ जाए। इतना ही करें।
मैंने सुना है कि एक आदमी एक रात एक झोपड़े में बैठ कर, छोटे से दीये को जला कर कोई शास्त्र पढ़ता रहा था। फिर आधी रात गए थक गया, फूंक मार कर दीया बुझा दिया। और तब बड़ा हैरान हो गया! जब तक दीया जल रहा था, पूर्णिमा का चांद बाहर ही खड़ा रहा, भीतर न आया। जब दीया बुझ गया, उसकी धीमी सी टिमटिमाती लौ खो गई, तो चांद की किरणें भीतर भर आईं। द्वार-द्वार, खिड़की-खिड़की, रंध्र-रंध्र से चांद भीतर नाचने लगा। वह आदमी बहुत हैरान हो गया! उसने कहा कि एक छोटा सा दीया इतने बड़े चांद को बाहर रोके रहा?
हम भी बहुत छोटे-छोटे दीये जलाए हैं अपने अहंकार के, मैं के, उनकी वजह
से परमात्मा का चांद बाहर ही खड़ा रह जाता है। समाधि का अर्थ हैः फूंको और बुझा दो इस दीये को, हो जाने दो अंधेरा। मिटा दो यह ज्योति जिसे समझा है मैं, और तत्काल चारों तरफ से वह आ जाता है, सब तरफ से आ जाता है, जो हमारे इस छोटे से अहंकार ने, मैं ने रोक रखा है।
इसलिए समाधि के तीन चरण मैंने आपसे कहेः अंधकार, अकेला होना, और मिट जाना। बुझ जाए दीया, प्रकाश परमात्मा का तत्काल मिल जाता है।
पहला चरण हैः अंधकार।
अगर कोई पहले चरण को ही पूरा कर ले, तो सब बात हो जाए। अगर कोई पूरे अंधकार में ही डूब जाए पूरी तरह, तो खुद भी मिट जाए, अंधेरा ही रह जाए। पहला चरण भी पूरा हो जाए, तो सब बात हो जाए। लेकिन वह पूरा नहीं हो पाता, इसलिए दूसरा करना पड़ता है। दूसरा भी पूरा हो जाए कि सच में ही मुझे ज्ञात हो जाए कि मैं बिल्कुल अकेला हूं, तो वह हमें मिल जाएगा जो सदा से अकेला ही है। लेकिन वह भी नहीं हो पाता, इसलिए तीसरा चरण उठाना पड़ता है--मिट गया हूं। अगर मिट जाऊं पूरा तो अभी मिल जाए वह जिसकी तलाश है। वह खुशी जो मुझे कभी न मिली, क्योंकि मैं ही तो दुख का कारण था। मुझे खुशी मिलेगी भी नहीं। वह रोशनी जो मुझे कभी दिखाई न पड़ी, क्योंकि मैं ही तो टिमटिमाता दीया था, जिसने कि बड़े सूरज को रोक दिया। वह स्वर, वह संगीत जो मुझे कभी सुनाई न पड़ा,

अभी सुनाई पड़ जाए। लेकिन मेरे मैं की धुन बहुत मजबूत है, और उसी में हम लीन हैं। वहां हम भीतर मैं और मैं और मैं कहे चले जा रहे हैं।
कबीर ने कहा है कि देखा था एक बकरा जो मैं-मैं-मैं-मैं किए जाता था। फिर मर गया वह बकरा। उसकी चमड़ी से किसी ने तानपूरे के तार बना लिए। और मैं उस रास्ते से गुजरता था। और मैंने उस तानपूरे पर ऐसा गीत सुना जो मैंने कभी न सुना। तो मैंने रोका उस आदमी को और कहा कि कहां से पाए ये तानपूरे? उसने कहा, देखा नहीं, एक बकरा था यहां जो मैं-मैं-मैं किए जाता था। यह वही है। मर गया मैं करने वाला। अब तानपूरे का तार हो गया। अब बड़ा संगीत पैदा हो रहा है।
लेकिन जब तक मैं-मैं पैदा होती थी, तब तक वह संगीत पैदा नहीं होता था।
वह मैं-मैं भीतर हम भी कहे जा रहे हैं, तो हम वीणा नहीं बन पाते परमात्मा की कि उसमें वह संगीत पैदा हो जाए। लेकिन हो सकता है।
कबीर खूब हंसने लगे कि यह तो खूब रही, जिंदा बकरा संगीत न गा सका, सिर्फ मैं-मैं करता रहा, और मरा बकरा संगीत पैदा कर रहा है!
कबीर ने लौट कर अपने साथियों से कहा, क्या अच्छा न हो कि हम भी मर जाएं! छोड़ दें मैं-मैं, मर जाएं! अभी मैं देख कर आ रहा हूं चमत्कार! एक जिंदा बकरा कभी गीत न गा सका, मर कर गीत गा रहा है। तो हम भी मर जाएं न!
वही मैं कह रहा हूं कि मिट जाएं न! तो फिर रह जाए संगीत। हमारे मिटते
ही रह जाता है।
मिटने के तीन चरण हम उठाएंगे। पहले चरण में पांच मिनट तक परिपूर्ण अंधकार का भाव करेंगे। ध्यान रखें, कोई किसी को छू न रहा हो, अगर छू रहा हो तो थोड़ा हट कर बैठ जाएंगे। कोई भी किसी को छूता हुआ नहीं हो।
आंख बंद कर लें, शरीर ढीला छोड़ दें। शरीर ढीला छोड़ दें, आंख बंद कर लें। और देखें, अंधकार ही अंधकार है... चारों ओर अंधकार ही अंधकार है... अनंत अंधकार है... सब ओर, सब दिशाओं में अंधकार ही अंधकार है... भाव करें, देखें, अनुभव करें, अंधकार ही अंधकार है... सब मिट गया, बस अंधकार ही अंधकार रह गया... चारों ओर घुप्प अंधकार है... इस अंधकार को पांच मिनट तक अनुभव करते रहें, अंधकार ही अंधकार है... न कुछ सूझता, न कुछ दिखाई पड़ता, बस अंधकार ही अंधकार है...
और जैसे-जैसे अंधकार गाढ़ा होगा, और जैसे-जैसे अंधकार घना होगा, और जैसे-जैसे अंधकार ही अंधकार रह जाएगा, वैसे-वैसे एक अपूर्व शांति सब तरफ से उतरने लगेगी। रोएं-रोएं में, हृदय की धड़कन-धड़कन में, श्वास-श्वास में शांति उतर आएगी।
देखें, अनुभव करें, अंधकार ही अंधकार है... अंधकार ही अंधकार है... एक पांच मिनट के लिए बस अंधकार को ही देखते रहें, और देखते-देखते ही मन शांत होता जाएगा... अंधकार ही अंधकार है... अंधकार ही अंधकार है... अनंत अंधकार है... सब ओर अंधकार है... अंधकार ही अंधकार है... और मन शांत होता जा रहा है, मन शांत हो रहा है, मन शांत हो रहा है, मन शांत हो रहा है... मन बिल्कुल शांत हो गया... मन शांत हो गया, मन शांत हो गया, मन शांत हो गया... अंधकार ही अंधकार है... अनंत अंधकार है... चारों ओर अंधकार है... अंधकार के अतिरिक्त कुछ भी नहीं... मन शांत हो गया है, मन शांत हो गया है...
अंधकार ही अंधकार है... बस केवल अंधकार है... और मन शांत हो गया, मन शांत
हो गया, मन शांत हो गया... मन शांत हो गया है, मन बिल्कुल शांत हो गया, मन शांत हो गया, मन शांत हो गया, मन शांत हो गया, मन शांत हो गया... अंधकार ही अंधकार है... चारों ओर अंधकार है... अनंत अंधकार है... और मन, और मन बिल्कुल शांत हो गया, मन शांत हो गया, मन शांत हो गया, मन शांत हो गया, मन शांत हो गया। इस अंधकार को ठीक से पहचान लें। समाधि का पहला चरण हैः परिपूर्ण अंधकार, जहां कुछ देखने को नहीं, जहां कुछ सोचने को नहीं, अंधकार, केवल अंधकार है। और मन शांत हो गया।
अब धीरे-धीरे आंखें खोल लें... जैसी शांति भीतर है वैसी ही बाहर भी दिखाई पड़ेगी। धीरे-धीरे आंख खोलें... बाहर भी सब शांत है, धीरे-धीरे आंख खोल लें... फिर दूसरा चरण समझें, और उसके लिए तैयार हों।
समाधि का दूसरा चरण हैः अकेले होने का बोध।
अकेले होने से ज्यादा सुंदर कुछ भी नहीं है।

मैंने सुना है कि किसी देश में, किसी गरीब माली के घर में, बहुत से सुंदर फूल खिले थे। सम्राट तक खबर पहुंच गई थी। सम्राट भी प्रेमी था फूलों का। उसने कहा, मैं भी आऊंगा। कल सुबह जब सूरज ऊगेगा, तो तेरी बगिया में फूल देखने मुझे भी आना है।
माली ने कहा, स्वागत है आपका।
दूसरे दिन सुबह सम्राट पहुंचा। वजीरों ने कहा था, मित्रों ने कहा था, हजारों फूल खिले हैं। लेकिन जब सम्राट पहुंचा तो बहुत चकित रह गया--सारे बगीचे में बस एक डंठल पर एक ही फूल था!
सम्राट ने माली से कहा, मैंने तो सुना था बहुत फूल खिले हैं। वे सब फूल कहां हैं?
तो वह माली हंसने लगा, उसने कहा, भीड़ में सौंदर्य कहां! एक को ही बचा लिया है। क्योंकि सुना है जानने वालों से कि अकेले के अतिरिक्त और सौंदर्य कहीं भी नहीं।
पता नहीं वह सम्राट समझा या नहीं समझा, लेकिन निश्चित ही वह माली केवल फूलों का माली न रहा होगा, वह आदमियों का भी माली रहा होगा। जीवन में जो भी सुंदर है वह अकेले में ही खिलता है, फूलता है, सुगंधित होता है। जीवन में जो भी श्रेष्ठ है वह सब अकेले में पैदा हुआ है। भीड़ ने कुछ भी महान को जन्म नहीं दिया--न कोई गीत, न कोई सौंदर्य, न कोई सत्य, न कोई समाधि। नहीं, भीड़ में कुछ भी पैदा नहीं हुआ है। जो भी जन्मा है, एकांत में, अकेले में जन्मा है।
लेकिन हम अकेले होते ही नहीं। हम सदा भीड़ में घिरे हैं। या तो बाहर की भीड़ से घिरे हैं या भीतर की भीड़ से घिरे हैं। भीड़ से हम छूटते ही नहीं; क्षण भर को अकेले नहीं होते। इसलिए जो भी महत्वपूर्ण है जीवन में, वह चूक जाता है।
समाधि में तो केवल वे ही जा सकते हैं, जो बाहर की ही भीड़ से नहीं, भीतर
की भीड़ से भी मुक्त हो जाते हैं, बस अकेले रह जाते हैं। निपट अकेले, टोटली अलोन, कुछ है ही नहीं, बस अकेला हूं, अकेला हूं, अकेला हूं। सत्य भी यही है। अकेले ही जन्मते हैं, अकेले ही मरते हैं, अकेले ही होते हैं, लेकिन भीड़ का भ्रम पैदा कर लेते हैं कि चारों तरफ भीड़ है। उस भीड़ के बीच इस भांति खो जाते हैं कि कभी पता ही नहीं चलता कि मैं कौन हूं।
तो दूसरा चरण हैः अकेले हो जाने का भाव। पांच मिनट तक हम अकेले हो जाने का भाव करेंगे।
आंख बंद कर लें, शरीर को ढीला छोड़ दें। आंख बंद कर लें, शरीर को ढीला छोड़ दें। एक मिनट तक अंधकार का भाव करेंः चारों ओर अंधकार ही अंधकार है, अनंत अंधकार है, अंधकार, अंधकार, अंधकार। न कुछ दिखाई पड़ता, न कुछ सूझता, बस अंधकार ही अंधकार है। कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता--लेकिन मैं हूं, अंधकार है और मैं हूं, और मैं बिल्कुल अकेला हूं। न कोई संगी है, न कोई साथी है। अकेला हूं, बिल्कुल अकेला हूं। मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं। श्वास-श्वास में, शरीर के रोएं-रोएं में, मन के कोने-कोने में, बस एक ही भाव बैठ जाने देंः मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं। और जैसे-जैसे यह भाव गहरा होगा, वैसे-वैसे अपूर्व शांति जन्मने लगेगी, भीतर सब शांत हो जाएगा।
मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं। न कोई संगी, न कोई साथी, रास्ता सूना है, निर्जन है, अंधकार है और मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं... पांच मिनट के लिए बिल्कुल अकेले हो जाएं... मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं...
मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं... मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं... मन बिल्कुल शांत हो गया है, मन बिल्कुल शीतल और शांत हो गया है... मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं...
मन शांत हो गया है, मन बिल्कुल शांत हो गया है, मन शांत हो गया, मन शांत
हो गया... मैं अकेला हूं--ड़ूब जाएं, बिल्कुल डूब जाएं, अंधेरा है, मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं... कोई नहीं, कोई नहीं, कोई संगी नहीं, साथी नहीं, मैं अकेला हूं... और अकेले होते-होते सब शांत हो जाता है...

मन शांत हो गया है, मन शांत हो गया है, मन शांत हो गया है, मन शांत हो गया, मन बिल्कुल शांत हो गया... मन शांत हो गया, मन शांत हो गया, मन शांत हो गया... मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं... मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं... और जैसे-जैसे अकेले हो जाएंगे, वैसे-वैसे ही शांत हो जाएंगे... श्वास-श्वास शांत हो गई है, रोआं-रोआं शांत हो गया है, मन शांत हो गया है... मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं... देखें, भीतर देखें, सब कैसा शांत हो गया, सब कैसा शांत हो गया। इस अकेले होने को ठीक से पहचान लें, समाधि का दूसरा चरण है। ठीक से पहचान लें, यह अकेला होना क्या है, यह अकेले होने की शांति क्या है। मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं... और मन शांत हो गया है, मन शांत हो गया है, मन शांत हो गया है, मन शांत हो गया है...
अब धीरे-धीरे आंख खोलें... जैसी शांति भीतर है, वैसी ही शांति बाहर है।
और जो भीतर अकेला होना पहचान ले, वह फिर बाहर की भीड़ में भी अकेला है। देखें, आंख खोलें, बाहर देखें... कितने लोग हैं चारों ओर, लेकिन फिर भी मैं तो अकेला हूं... धीरे-धीरे आंख खोलें... देखें, कितने लोग हैं चारों ओर, फिर भी मैं तो अकेला हूं।
अब तीसरे प्रयोग को समझ लें, फिर उसे करें।
तीसरा प्रयोग हैः मरने का, मिटने का, ना-कुछ हो जाने का।
जाता था कोई बुद्ध के पास, पूछता था, ज्ञान कहां पाएं? बुद्ध कहते, चले जाओ मरघट में। चौंकता वह आदमी! सोचता, सुनने में भूल हो गई। फिर पूछता, समझा नहीं। आनंद पाना है, सत्य पाना है। कहां जाऊं? कैसे पाऊं? बुद्ध कहते, मरघट में। तब भूल की गुंजाइश न रहती। सोचता, शायद मजाक करते होंगे। लेकिन बुद्ध हंसते और कहते, मजाक नहीं करता, जाओ महीने, दो महीने, चार महीने मरघट में ही रह जाओ। अनेक भिक्षुओं को मरघट में रहने भेज देते।
सोचें, तीन-चार महीने मरघट में रहना पड़े आपको, सुबह से सांझ, सांझ से सुबह। सूरज भी वहीं निकले, सूरज वहीं ढले; रात वहीं आए, दिन वहीं आए; सांझ वहीं, सुबह वहीं; अंधेरा वहीं घिरे, प्रकाश वहां फैले। और दिन भर कोई आए, रोते हुए लोग आएं, लाशें आएं, अरथियां आएं, आग पर चढ़ें, चिता में जलें, और दिन भर यही चले, और आप देखते रहें, देखते रहें। क्या यह असंभव है कि कुछ दिन में किसी क्षण आपको यह ख्याल न आ जाए कि यह और कोई नहीं जल रहा, मैं ही जल रहा हूं? समय का थोड़ा फासला है। आज जो जल रहा है, कल मैं जलूंगा। क्या मुश्किल है कि मरघट पर ख्याल न आ जाए?
और जिसे यह ख्याल आ जाए कि मैं भी मरूंगा, उसकी जिंदगी में बड़ा फर्क हो जाता है। तब फिर वह वैसा ही नहीं जीता जैसा कल तक जीता था। और जिसे यह ख्याल आ जाए मैं मरूंगा ही, उसे यह भी पता चल जाता है कि जो मरेगा ही वह मरा हुआ होगा ही, अन्यथा मरेगा कैसे? और जिसे यह ख्याल आ जाए कि कुछ है मेरे भीतर जो मरेगा ही, उसकी यह खोज भी शुरू हो जाएगी कि होगा जरूर कुछ--शायद हो या न हो, पता तो लगाएं--जो नहीं मरेगा। लेकिन इसका पता तो बिना मरे कैसे लगे? मरें तो ही पता लगे कि कुछ बचता है या नहीं बचता है?
तो समाधि का गहरा से गहरा जो चरण है, वह है मर जाने की प्रतीति--मर गया हूं मैं, समाप्त हो गया हूं मैं। और जैसे ही कोई देख ले अपने को ही मरा हुआ, पड़ा हुआ, वैसे ही उसे उसकी पहचान भी हो जाती है जो देख रहा है। खुद को ही मरा हुआ जो देख रहा है वह मैं नहीं हूं, वह वही है जो है। या ऐसा कहें कि वही मैं हूं जो असली मेरा मैं है--जो देखता है, जो जानता है, जो मरते समय यह भी देखेगा कि मैं मर रहा हूं।
सुकरात मरा। जहर दिया था उसे। लेट गया था जहर पीकर। मित्र रो रहे थे चारों तरफ, और सुकरात कहता था, रोओ मत, देखो मैं मर रहा हूं। लेकिन उन्हें कहां फुर्सत थी देखने की! सुकरात कहता था, देखो मेरे पैर तक मैं मर गया हूं, घुटने तक मर गया हूं, अब घुटने तक का मुझे पता नहीं चलता कि शरीर है। लेकिन बड़ा आश्चर्य है, घुटने तक मैं मर गया हूं, लेकिन मैं तो जितना था उतना ही अब भी मालूम हो रहा हूं! फिर सुकरात कहने लगा, कमर तक मर गया हूं, अब कमर तक मुझे पता नहीं चलता। लेकिन सुनो, आश्चर्य, कि मैं तो उतना ही हूं जितना था! फिर सुकरात कहने लगा, हाथ भी शिथिल हो गए हैं, हाथ भी मर गए हैं, अब हाथ हिला नहीं सकता। लेकिन मैं तो अब भी हूं! जो हाथ को हिलाता था वह अब भी है! तब

सुकरात कहने लगा, जल्दी ही हृदय की धड़कन भी बंद हो जाएगी। शायद मैं तुमसे कहने को न बचूं कि अब भी हूं। लेकिन जब पैर के मरने पर मैं न मरा; जब हाथ के मरने पर मैं न मरा; जब कमर तक सब समाप्त हो गया, मैं न मरा; और जब मेरी आंखें नहीं खुल रहीं और मैं हूं; तो शायद जब मेरा हृदय भी बंद हो जाएगा, तब भी मैं होऊंगा। लेकिन मैं शायद बचूं न कहने को।
ध्यान की, समाधि की गहरी प्रतीति में ऐसा ही होगा। लगेगाः यह रहा शरीर, मर गया। यह पड़ा है शरीर, यह धड़कन चल रही है--दूर हमसे, मीलों फासले पर। यह श्वास भी चल रही है, लेकिन जैसे कोई और लेता हो। और यह रहा मैं, और देखता हूं, जानता हूं, साक्षी हूं। मैं कुछ और हूं और जिसे मैंने समझा था कि मैं हूं वह मैं नहीं हूं।
लेकिन तीसरा प्रयोग गहरे में उतरे बिना ख्याल में नहीं आ सकता है। इसलिए अब हम तीसरा प्रयोग करें। फिर चौथे प्रयोग में तीनों प्रयोगों को इकट्ठा करेंगे।
आंख बंद कर लें, शरीर को ढीला छोड़ दें। आंख बंद कर लें, शरीर को ढीला छोड़ दें। एक मिनट देखेंः अंधकार ही अंधकार है, चारों ओर अंधकार ही अंधकार है। चारों ओर अंधकार ही अंधकार है... अनंत अंधकार है... । फिर एक मिनट जानें-- मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं... । और अब तीसरा प्रयोग करेंः मैं मर रहा हूं। भाव करेंः मर रहा हूं। यह शरीर, यह श्वास, यह प्राण, यह धड़कन, यह सब जा रही, सब जा रही। मैं मर रहा हूं, मैं मर रहा हूं, मैं मिटता जा रहा हूं, मैं मर रहा हूं, मैं मिट रहा हूं, मैं समाप्त हो रहा हूं... मैं मर गया हूं, मैं हूं ही नहीं... मैं मिट गया हूं, मैं हूं ही नहीं... पांच मिनट के लिए इस न होने में डूब जाएं... मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं... और जैसे-जैसे डूबेंगे, वैसे ही अपूर्व शांति सब तरफ से घेर लेगी... मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं हूं ही नहीं... मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं... मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं... और मन बिल्कुल शांत हो गया, मन शांत हो गया, मन शांत हो गया... मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं... मन शांत हो गया, मन बिल्कुल शांत हो गया, मन शांत हो गया, मन शांत हो गया, मन शांत हो गया, मन शांत हो गया, मन शांत हो गया, मन शांत हो गया... मन शांत हो गया है, मन शांत हो गया है, मन बिल्कुल शांत हो गया है...
मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं... मन शांत हो गया, मन शांत हो गया, मन शांत हो गया, मन शांत हो गया... मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं बिल्कुल नहीं हूं... मन शांत हो गया, मन शांत हो गया, मन शांत हो गया, मन शांत हो गया... मैं नहीं हूं, वही रह गया जो सदा है... मैं नहीं हूं, वही बच रहा जो सदा है... मैं नहीं हूं, लहर खो गई, सागर ही रह गया, लहर खो गई, सागर ही रह गया...
इस भाव को ठीक से पहचान लें, समाधि का तीसरा चरण, इसे ठीक से प्राणों में सम्हाल लें... मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं... वही रह गया है, वही रह गया है जो है, जो सदा है, जो सब में है...
फिर धीरे-धीरे आंख खोलें... देखें... सदा देखा है, मैं था, ऐसे... आंख खोलें, ऐसे देखें जैसे मैं नहीं हूं, तब भीतर से वही देखता है, जो बाहर भी दिखाई पड़ रहा है... धीरे-धीरे आंख खोलें... देखें ऐसे जैसे मैं नहीं हूं, तब वही है भीतर और वही है बाहर, वही है देखने वाला, वही है जो दिखाई पड़ रहा है... धीरे-धीरे आंख खोलें...
ये तीन चरण हैं। समाधि इन तीनों का इकट्ठा प्रतिफलन, इकट्ठा जोड़ है।
एक ही साथ--अंधेरा, अकेला होना और फिर मिट जाना--इन तीनों को इकट्ठा करेंगे। और जब तीनों को इकट्ठा करें, तो परिपूर्ण भाव से करना है। पूरे भाव से छोड़ ही देना है अपने को। कुछ बचाना ही नहीं, छोड़ ही देना, छोड़ देना, सब छोड़ देना, ताकि वही रह जाए जिसे हम छोड़ना भी चाहें तो नहीं छोड़ सकते हैं।

आंख बंद कर लें, शरीर को ढीला छोड़ दें और समाधि में प्रवेश करने की तैयारी करें। शरीर को ढीला छोड़ दें, आंख बंद कर लें। शरीर गिरे तो गिर जाए, चिंता न करें; झुके तो झुक जाए, चिंता न करें; ढीला छोड़ दें, आंख बंद कर लें। पहला चरणः अंधकार ही अंधकार है, बस अंधकार ही अंधकार है, चारों ओर अंधकार ही अंधकार है... छोड़ दें, बिल्कुल अंधेरे में छोड़ दें, चारों ओर अंधकार ही अंधकार है, अंधकार ही अंधकार है... शरीर शिथिल होता जाएगा, छोड़ दें... शरीर शिथिल हो रहा, शरीर शिथिल हो रहा, सब शिथिल हो जाएगा... बस अंधकार ही अंधकार है और सब शांत हो गया... श्वास भी धीमी और शांत हो जाएगी, उसे भी छोड़ दें... श्वास भी शांत होती जा रही है...
मैं अकेला हूं, मैं बिल्कुल अकेला हूं, कोई संगी नहीं, कोई साथी नहीं... मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं...
और मैं भी खोता जा रहा हूं, जैसे बूंद सागर में गिरे और खो जाए, मैं भी
खो रहा हूं, मैं भी मिट रहा हूं, मैं भी मर रहा हूं... सब समाप्त होता जा रहा है, मैं मर रहा हूं, मैं मर रहा हूं, मैं मिट रहा हूं... न यह शरीर हूं मैं, न यह श्वास हूं मैं, न यह मन हूं मैं... यह सब मिट रहा है, यह सब समाप्त हो रहा है, यह सब मर रहा है...
मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं... छोड़ दें, अपने को बिल्कुल छोड़ दें, मिट जाएं... मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं... और भीतर, और भीतर, और गहरे में छोड़ दें अपने को, कहीं कोई पकड़ न रखें, मिट ही जाएं... मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं... सब शांत, सब मौन हो गया है; सब शांत, सब मौन हो गया है; सब शून्य हो गया है...
इसी शून्य में जागता है, इसी शून्य में उठता है आनंद। सब तरफ से घेर लेगा। शांति और आनंद सब तरफ बरसने लगेंगे... मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं मिट गया हूं, मैं समाप्त हो गया हूं... एक अपूर्व शांति, एक अपूर्व आनंद की लहर दौड़ने लगेगी... मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं... वही रह गया जो सदा है, वही रह गया जो मेरे पहले था और मेरे बाद भी होगा... मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं... मन शांत हो गया, प्राण शांत हो गए, सब शांत हो गया... आत्मा की झील पर कोई लहर नहीं, सब शांत हो गया... आत्मा के सागर पर एक भी लहर नहीं, सब शांत हो गया... और पहचानें, देखें--भीतर कैसा आनंद! पहचानें--भीतर कौन है यह जो जान रहा, देख रहा? कौन है यह साक्षी जो स्वयं को ही मरा हुआ देख रहा? कौन है? भीतर, और भीतर, और भीतर देखें--कौन है जो जान रहा? कौन है जो ज्ञाता है? कौन है जो द्रष्टा है? यही है, यही है सत्य। आत्मा आनंद से भर गई है।
अब धीरे-धीरे दो-चार गहरी श्वास लें। प्रत्येक श्वास आनंद से, शांति
से भरी हुई लगेगी। धीरे-धीरे दो-चार गहरी श्वास लें, धीरे-धीरे दो-चार गहरी श्वास लें। प्रत्येक श्वास शांति और आनंद से भर गई है। फिर धीरे-धीरे आंख खोलें। जो भीतर है वही बाहर भी है।
इस प्रयोग को रात सोते समय करें, और करते-करते ही सो जाएं। और ऐसा न समझें कि मेरे साथ दो-चार दिन कर लिया तो हो गया, उसे रोज करते रहें रात सोते वक्त। धीरे-धीरे गहरे से गहरा उतर जाएगा, और आप कब दूसरे आदमी हो गए, यह आपको पता भी नहीं चलेगा। कब कली फूल बन गई, कहां पता चलता है! कब पक्षी उड़ गया और पंख फैला दिए आकाश में, कब पता चलता है! लेकिन जब फैल जाते हैं आकाश में पंख, तो सब बदल जाता है। एक जिंदगी है जमीन पर सरकने की, और एक जिंदगी है मुक्त आकाश में उड़ने की। और जब खिल जाती है कली--शोर नहीं होता, आवाज नहीं होती, किसी को पता नहीं चलता, कहीं खटका नहीं होता--लेकिन सुगंध बिखर जाती है चारों ओर, और धन्य हो जाता है फूल खिल कर पूरा, आनंद से विभोर वह प्रभु के चरणों में समर्पित हो जाता है। धीरे-धीरे रोज करते रहें रात सोते समय, कभी भी, कभी भी घटना घट सकती है।
और कल के लिए एक सूचना। तीन रात हमने ध्यान किया, हम समझ गए कि क्या करना है। कल एक चौथा अलग ही प्रयोग करेंगे। लेकिन कल सिर्फ वे ही लोग आएंगे जो तीन दिन आए हैं, किन्हीं नये मित्रों को न ले आएं। कल होगा मौन पूरे घंटे भर, साइलेंट कम्युनिकेशन। शब्द से बहुत कुछ कहता हूं, लेकिन जो कहने योग्य है वह शब्द से नहीं कहा जा सकता है। तीन दिन हम चुप बैठे हैं

यहां, कल घंटे भर मेरे पास चुप बैठेंगे। न मैं बोलूंगा कुछ, न आप बोलेंगे कुछ। लेकिन फिर भी मैं बोलूंगा--उसी मौन से! और फिर भी आप सुनेंगे--उसी मौन से! चुपचाप बैठ कर सुनने की प्रतीक्षा भर करना, शांत हो जाना, जैसे हम ध्यान करते हैं, ऐसा ही चुपचाप घंटे भर कल बैठेंगे।
मैं मौजूद रहूंगा। किसी के मन में अचानक लगे कि मेरे पास आना है, तो वह चुपचाप मेरे पास आ जाएगा, दो मिनट मेरे पास बैठेगा, फिर अपनी जगह लौट जाएगा। लेकिन कोई आ रहा है दूसरा, यह देख कर कोई न आए। किसी को आने जैसा लग जाए, आ जाए। और किसी को आने जैसा लगे, तो संकोच में रुके भी न, आ ही जाए।

समाधि के द्वार पर
तीसरा प्रवचन

सम्मोहन का उपयोग

मेरे प्रिय आत्मन्!
समाधि है जीते जी मृत्यु को अनुभव कर लेना। लेकिन जो जीते जी मृत्यु
को जान लेता है, वह अमृत को उपलब्ध हो जाता है। इस संबंध में कल मैंने कुछ आपसे कहा था। बहुत से प्रश्न पूछे गए हैं। उन प्रश्नों के माध्यम से ही जो मुझे आज कहना है, वह आपसे मैं कहूंगा।

एक मित्र ने पूछा है कि रात की समाधि के प्रयोग में, मैं मर रहा हूं या
मर गया हूं, अगर मैं, यानी साक्षी हूं, तो वह साक्षी कैसे मर सकता है? यह भावना करने का क्या अर्थ है?

जो साक्षी है वह मैं नहीं हूं। और जब मैं मर जाऊंगा, न हो जाऊंगा, शून्य हो जाऊंगा, तब जो शेष रह जाएगा, वही साक्षी है। इसलिए कोई साक्षी नहीं बन सकता है। अगर बनूंगा, तो मेरा अहंकार ही मौजूद रहेगा। अगर मैंने कहा, मैं साक्षी हूं, तो साक्षी अभी पैदा ही नहीं हुआ। क्योंकि साक्षी तो वह है जो यह भी देख रहा होगा; यह "मैं साक्षी हूं," इस बात को भी जो देख रहा है, वह साक्षी है। मैं को भी जो जानता है, वह साक्षी है। इसलिए साक्षी कभी मैं नहीं है। यह मुझे पता चलना कि मैं हूं, यह भी जो मेरे पीछे चेतना है, उसका बोध है।
जब तक मैं हूं, तब तक साक्षी का पता नहीं चलेगा। मुझे तो मिटना ही पड़ेगा, मुझे तो समाप्त होना ही पड़ेगा। मेरे मिटने पर ही, मेरे हट जाने पर ही साक्षी प्रकट होगा। साक्षी मौजूद है, आत्मा मौजूद है, वह जिसे हम ब्रह्म कहें, वह भीतर मौजूद है। लेकिन मेरे मैं की पर्त में दबा हुआ है। जैसे पानी पर, जैसे आपकी नदी पर, पिछले दो वर्ष पहले मैं आया था, तो पत्तों से ढंकी थी सारी नदी, पानी दिखाई नहीं पड़ता था। नीचे थी नदी, ऊपर थे पत्ते। पानी का कोई पता न चलता था, पत्तों ने सब ढांक दिया था। लेकिन जरा सा पत्ता हटाएं और नीचे से नदी झांकने लगे। साक्षी है भीतर, उसकी अनंत धारा है, लेकिन मैं के पत्तों ने सब तरफ से ढांक दिया है। थोड़ा सा हटाएं मैं को, नीचे से साक्षी झांकने लगेगा।
ध्यान रहे, इस बात को समझ लेना बहुत जरूरी है कि मैं कभी साक्षी नहीं
हो सकता हूं, जो साक्षी है उसके सामने मैं भी खो जाऊंगा। मैं कभी परमात्मा से नहीं मिल सकता हूं, क्योंकि मैं ही उससे मिलने में बाधा हूं। जब मैं नहीं रह जाऊंगा, तभी उससे मिलना हो सकता है। मैं मिटूं तो ही उसकी उपलब्धि है। और यही सबसे बड़ी कठिनाई है कि मैं कैसे मिटूं? मैं हूं! मैं मिटूं कैसे?
अगर मैं सच ही होता, तो मिटना असंभव था। लेकिन मैं हूं नहीं, कंसट्रक्टेड हूं, बनाया हुआ हूं। सिर्फ ख्याल है मुझे कि मैं हूं, मैं हूं नहीं। सिर्फ ख्याल है इस बात का कि मैं हूं। और यह ख्याल हमने एक व्यवस्था से पैदा किया है। यह ख्याल एक बाइ-प्रोडक्ट है। यह मेरे होने की जो धारणा है, यह सिर्फ सपने में निर्मित एक भाव है। हम बहुत सी बातें निर्मित कर लेते हैं।
हम यहां बैठे हैं। हम कह सकते हैं, एक समाज यहां बैठा है। लेकिन एक-एक व्यक्ति इस कमरे के बाहर चले जाएं, फिर हम पीछे पूछें कि समाज कहां है? क्योंकि जो गए उसमें एक-एक व्यक्ति गया, समाज तो बाहर निकला ही नहीं। अब समाज कहां है? तो हम कहेंगे कि समाज तो अब कहीं भी नहीं है, क्योंकि समाज केवल व्यक्तियों का जोड़ था। समाज का अपना कोई अस्तित्व न था। समाज सिर्फ एक संज्ञा था, एक शब्द था।
एक छोटी सी घटना से मैं समझाऊं।
एक भिक्षु हुआ नागसेन। मिलिंद नाम के एक सम्राट ने उसे अपने दरबार में आमंत्रित किया था। रथ भेजा है उसे लेने, नागसेन रथ पर बैठ कर आया।

लेकिन जब निमंत्रण गया मिलिंद का, नागसेन को मिलिंद के राजदूतों ने कहा कि सम्राट ने निमंत्रण किया है और कहा है, भिक्षु नागसेन आएं, हम उनका स्वागत करेंगे। तो नागसेन बहुत हंसने लगा और उसने कहा, आ जाऊंगा जरूर, लेकिन भिक्षु नागसेन जैसा कोई है नहीं।
तो उन राजदूतों ने कहा, फिर आएगा कौन?
नागसेन ने कहा, आ जाऊंगा जरूर, लेकिन भिक्षु नागसेन जैसा कोई है नहीं। जाकर सम्राट से इतना कह देना।
सम्राट ने कहा, किस पागल को हमने बुला लिया! हम तो भिक्षु नागसेन को ही बुलाए हैं। अगर वह है ही नहीं तो आएगा कौन? फिर कहा, ठीक है, आने दें।
राज-द्वार पर स्वागत किया नागसेन का। नागसेन रथ से उतरा। सम्राट ने पूछा, आ गए आप, मैं भिक्षु नागसेन का स्वागत करता हूं।
फिर वह हंसा और उसने कहा, आ तो गया हूं, लेकिन भिक्षु नागसेन जैसा कोई
है नहीं।
तो सम्राट ने कहा, आप पहेली बना रहे हैं! अगर भिक्षु नागसेन नहीं है,
तो कौन आया है?
तो उस नागसेन ने कहा कि यह रथ दिखाई पड़ता है जिस पर मैं आया?
सम्राट ने कहा, दिखाई पड़ता है।
भिक्षु नागसेन ने कहा, इसके घोड़ों को अलग खोल दो। घोड़े खोल दिए गए और नागसेन ने सम्राट से पूछा, ये घोड़े रथ हैं?
सम्राट ने कहा, घोड़े रथ नहीं हैं।
घोड़े अलग कर दिए गए। नागसेन ने कहा, इसके पहियों को भी निकाल डालो। सम्राट ने कहा, मतलब क्या है आपका?
पहिए निकाल डाले। उस नागसेन ने कहा, ये पहिए रथ हैं?
सम्राट ने कहा, पहिए रथ नहीं हैं।
फिर रथ की एक-एक चीज निकलने लगी, एक-एक चीज निकलने लगी। और वह पूछने लगा, यह है रथ? यह है रथ? धीरे-धीरे सब चीजें निकल गईं। और रथ तो कोई भी न था उनमें से। पीछे कुछ भी न बचा। फिर उस नागसेन ने कहा, रथ कहां है तुम्हारा? रथ तो नहीं था। तो सम्राट ने कहा, रथ तो अब नहीं है।
उस नागसेन ने कहा, और जितनी चीजें निकलीं, सब पर आपने कहा, यह रथ नहीं है। फिर अब रथ कहां है? रथ पीछे बचना चाहिए।
तो सम्राट ने कहा कि रथ उन सभी चीजों का जोड़ था। रथ का अपना कोई होना नहीं है। घोड़े थे, पहिए थे, और सब था, सबका जोड़ रथ था।
वह नागसेन कहने लगा, मैं भी स्मृति और विचारों का जोड़ हूं, ज्यादा नहीं। और एक-एक स्मृति, एक-एक विचार को निकाल दूं, तो फिर मैं नहीं बचता हूं। फिर जो बचता है वह भिक्षु नागसेन नहीं है, वह परमात्मा ही है। भिक्षु नागसेन परमात्मा के ऊपर जुड़े हुए शब्दों का जोड़ है।
हम भी शब्दों के जोड़ हैं। बचपन से मौत तक, मरने तक, हम शब्दों को इकट्ठा कर रहे हैं। मेरा नाम! जो कि एक झूठ है। कोई नाम लेकर पैदा नहीं होता। लेकिन एक शब्द चिपक जाता है। मेरे घर का पता! कौन सा है मेरा घर? किसी भी घर में मुझे बड़ा किया जाता, वही मेरा घर हो जाता। मतलब यह कि मेरा कोई घर नहीं है। जिस घर की छाप मेरे मन पर बचपन से पड़ गई है, वही मेरा घर हो गया। कौन सा है मेरा देश? जिस देश में मैं आंखें खोलता, वही देश मेरा हो जाता। मतलब मेरा कोई देश नहीं है। आंखों ने पहली दफा जिस भूमि को पकड़ लिया, एक्सपोजर जिस भूमि पर आंख का पहले हो गया, वही है मेरा देश। कौन हैं मेरे प्रियजन? कौन हैं मेरे संबंधी? वे ही जिन पर मेरी आंखें खुलीं और जिनकी तस्वीरें मैंने पकड़ लीं। इन सबका जोड़ इकट्ठा हो गया है।
अगर इसमें से एक-एक चीज को निकालने लगें और पूछने लगें, कौन हूं मैं?
तो कोई भी पता न चलेगा। जब सब जोड़ खाली हो जाएगा, रथ का सब सामान निकल जाएगा, तब बड़ी मुश्किल हो जाएगी पूछना कि कौन हूं मैं? तब कोई उत्तर न आएगा। फिर भी कुछ शेष रह जाएगा। वही शेष रह जाएगा जो मेरे जन्म के भी पहले था और जो मेरे मरने के भी बाद होता है। लेकिन मैं बिखर जाऊंगा, मैं नहीं रह जाऊंगा। "मैं" एक जोड़ है।
वैज्ञानिक कुछ प्रयोग करते थे। मुर्गी का बच्चा पैदा होता है, फिर एकदम से अपनी मां के पीछे भागने लगता है। उसे कुछ पता नहीं कि उसकी मां कौन

है, वह भागने क्यों लगता है अपनी मां के पीछे? तो सदा हम ऐसा ही सोचते थे कि बच्चे को किसी तरह पता होना चाहिए कि उसकी मां यह है, इसलिए भागने लगता है। तो वैज्ञानिकों ने एक काम किया, मुर्गी के अंडे से बच्चा निकला--मुर्गी तो नहीं थी उसके पास, उसकी मां को तो हटा दिया, एक गैस भरा हुआ गुब्बारा उसकी जगह रखा हुआ था--हवा फिरती, गुब्बारा उड़ा, सरका, मुर्गी का बच्चा गुब्बारे के पीछे भागा। फिर बड़ी मुश्किल हो गई। फिर वह गुब्बारे को मां समझने लगा और मां को पहचानना मुश्किल हो गया। पहला एक्सपोजर गुब्बारे का हो गया। फिर वैज्ञानिक इस ख्याल पर पहुंचे कि पहली दफा चेतना, जैसे कैमरे का लेंस खुलता है और चित्र पकड़ जाते हैं, ऐसा ही जो पहला एक्सपोजर है वह मां है। पहला होने की वजह से उससे लगाव बहुत गहरा है। फिर सब एक्सपोजर उसके बाद, फिर कैमरा बाद में खुलेगा। इसलिए बच्चा मां से सदा के लिए सबसे गहरा बंधा रह जाता है। वह पहली दफा उसके मन में, मन ने पहला चित्र उसका लिया है। वह उसके मन में गहरा बैठ जाता है।
फिर वह मुर्गी के पीछे नहीं भागता था वह बच्चा, वह गुब्बारे के पीछे भागता था। वह गुब्बारे के पास सट कर सोने की कोशिश करता था, जैसे अपनी मां के पास सोने की कोशिश की होती। फिर बहुत उपाय किए उसे समझाने के कि यह तेरी मां नहीं है, लेकिन उसके लिए तो गुब्बारा मां हो चुका था।
वह बच्चा मर गया, क्योंकि वह अपनी मां को फिर नहीं समझ पाया कि उसकी मां है। मोमेंट ऑफ एक्सपोजर, एक क्षण है जब हमारा चित्त खुलता है और कुछ पकड़ लेता है। बचपन से हमारा चित्त खुलता रहता है, पकड़ता रहता है। फिर जो भी इकट्ठी हो गई है स्मृति, उसके जोड़ का नाम है मैं। अगर आपकी सारी स्मृति छीनी जा सके, किसको कहिएगा कि मैं हूं? फिर बताना मुश्किल हो जाएगा कि मैं कौन हूं। मैं, मैं कोई सच्चाई नहीं है, मैं स्मृतियों का एलबम है, जोड़ है। और जब तक यह जोड़ हमें सबसे ज्यादा सत्य मालूम पड़ता है, तब तक इस जोड़ के पीछे जो है उसका पता न चलेगा। झील पर फैले हुए पत्तों को ही सब कुछ समझ रखा है हमने, हमें झील का कोई पता न चलेगा। पत्ते हटाना पड़ेंगे, झील को उघाड़ना पड़ेगा।
परमात्मा हमसे कहीं वहां दूर नहीं है, परमात्मा हमसे यहां दूर है, भीतर की तरफ। वह जहां हमने मैं को इकट्ठा कर रखा है, उसके नीचे दबा है। परमात्मा मैं के नीचे दबा है। जैसे पेपर वेट के नीचे पन्ने दबे हों और तड़प रहे हों, हवा चलती हो और पन्ने तड़पते हों और पत्थर दबाए हो, ऐसे पूरे वक्त हमारे भीतर परमात्मा तड़प रहा है और मैं का पत्थर उसे दबाए हुए है।
समाधि में मैं को खो देना पड़ता है। मैं खो जाता है, पन्ने उड़ जाते हैं, तड़प मिट जाती है, भीतर जो छिपा है वह प्रकट हो जाता है। साक्षी आप नहीं बनेंगे, जब आप नहीं रहेंगे तो जो शेष रह जाएगा, दि रिमेनिंग, वह साक्षी होगा। इसलिए साक्षी को कभी पता नहीं चलता कि मैं साक्षी हूं। मैं तो साक्षी हो ही नहीं सकता। मैं जब नहीं होता हूं, तब जो होता है उसका नाम साक्षी है।
तो जब मैं कह रहा हूं मैं को मिटा दें, तो मेरा मतलब कुल इतना है कि मैं
को ठीक से पहचान लें, यह सत्य नहीं है, यह सिर्फ स्मृति का जोड़ है।
मेरे एक मित्र हैं, डाक्टर हैं। ट्रेन से चल रहे थे, भीड़ थी और बाहर डंडे पकड़ कर लटके हुए थे। गिर पड़े, हाथ छूट गया, सिर में चोट लगी, स्मृतियां खो गईं, अपना नाम भी भूल गए। बचपन से मेरे साथ पढ़े थे, गांव गया, उन्हें देखने गया। वे मुझे ऐसे देखने लगे जैसे कभी न देखा हो। वे एक्सपोजर जो थे वे मिट गए, वह जो स्मृति थी वह खो गई। वे मुझसे पूछने लगे, कौन हैं आप? कैसे आए? वे किसी को न पहचानते थे--पत्नी को न पहचानते थे, बेटे को न पहचानते थे, पिता को न पहचानते थे, वे सब भूल गए थे। सब भूल गए थे, वे अपने को न पहचानते थे। उनसे पूछिए, कौन हैं आप? तो वे ऐसा हाथ करते थे, कुछ मुझे पता नहीं कौन हूं मैं।
मैं कहां गया? लेकिन वे तो अब भी हैं, मैं कहां गया? वह जो जोड़ा था, बनाया था, वह गया, वह बिखर गया, वह खो गया। चोट खा गया मस्तिष्क और जहां स्मृति इकट्ठी थी वह केंद्र टूट गया। उसके केंद्र के टूट जाने से बिखर गई बात। चोट से अगर केंद्र टूटे तो आदमी विक्षिप्त हो जाता है। क्योंकि उसे

भीतर का भी पता नहीं चलता और जिसे वह जानता था कि मैं हूं वह भी टूट जाता है, वह मुश्किल में पड़ जाता है।
लेकिन अगर हम अपनी समझ से मैं को विसर्जित कर दें--समझ से--तो भीतर का पता चल जाता है। समझ से न करें, टूट जाए... तोड़ा जा सकता है। अब तो ब्रेन-वॉश के बहुत उपाय ईजाद हो गए हैं। चीन में बड़े जोर से प्रयोग कर रहे हैं वे। आदमी के दिमाग को पोंछा जा सकता है। जैसे हम टेप-रिकार्ड को वापस पोंछ कर साफ कर लेते हैं, ऐसे मस्तिष्क की स्मृति को भी पोंछा जा सकता है। बड़ी खतरनाक ईजाद है आदमी के हाथ में। जो हमारा दुश्मन है, सरकार के हाथ में ताकत हो तो उसके दिमाग को वॉश कर दे, साफ कर दे! वह भूल ही जाए कि वह कौन है, विचार क्या हैं, स्मृति क्या है। वह क ख ग से उसे सीखना पड़े, फिर से सीखना पड़े, फिर नया मैं बनाना पड़े।
मैं हमारा वास्तविक तत्व नहीं है। मैं के पीछे हमारा वास्तविक तत्व है। लेकिन जब तक हमारी नजर मैं पर लगी रहेगी, तब तक पीछे नजर न जाएगी। इसलिए समाधि मैं से नजर को हटा कर पीछे की तरफ ले जाने के लिए है। समाधि का मतलब है कि मैं नहीं हूं, फिर क्या है? उसे जानना है। यदि मैं न रहूं तो फिर क्या है? उसे जानना है, उसे पहचानना है।
बुद्ध की मृत्यु करीब आई। तो उनके प्रियजन, उनको प्रेम करने वाले भिक्षु, उनके शिष्य और उनके श्रद्धालु लाखों की तादाद में इकट्ठे हो गए और वे रोने लगे। बुद्ध ने कहा, तुम किसके लिए रोते हो? उसके लिए जो था ही नहीं या उसके लिए जो फिर भी रहेगा? बड़ी अजीब बात उन्होंने पूछी! उसके लिए रोते हो जो था ही नहीं या उसके लिए जो फिर भी रहेगा--किसके लिए रोते हो?
एक भिक्षु ने कहा, हम आपके लिए रोते हैं। आप मरने के करीब हैं, आप मिटने के करीब हैं।
बुद्ध ने कहा, जो मिटने के करीब है वह था ही नहीं। क्योंकि वही मिट सकता है जो रहा ही न हो; जो है उसे मिटाने का कोई उपाय नहीं।
एक रेत के छोटे से कण को भी हम नहीं मिटा सकते। हमने हाइड्रोजन बम तो बना लिया है, लेकिन हम रेत के एक छोटे से कण को भी नहीं मिटा सकते। मिटा नहीं सकते, अस्तित्व के बाहर नहीं भेज सकते। वह रहेगा। जो है वह रहेगा। सिर्फ वही मिट सकता है जो न रहा हो। कंसट्रक्शंस मिट सकते हैं, संयोग मिट सकते हैं।
हम एक कुर्सी को मिटा सकते हैं, क्योंकि कुर्सी एक जोड़ थी। चार लकड़ी
के टुकड़ों को कीलें ठोंक कर हमने खड़ा कर दिया था। कुर्सी थी नहीं, सिर्फ जोड़ थी। मिट सकती है। लेकिन कुर्सी जिस तत्व से बनी है वह नहीं मिट सकता। लकड़ी भी मिट सकती है, क्योंकि वह भी जोड़ थी। लकड़ी के और गहरे में जो एलिमेंट्स हैं, वे नहीं मिट सकते। अगर वे भी मिट सकते हैं तो उनके भी गहरे में जो और गहरे में अणु हैं, परमाणु हैं, वे नहीं मिट सकते। अगर वे भी मिट सकते हैं तो वे भी जोड़ हैं। जो भी मिट सकता है वह जोड़ है। और नीचे जाना पड़ेगा, और नीचे जाना पड़ेगा। इलेक्ट्रांस नहीं मिट सकते, एनर्जी नहीं मिट सकती, शक्ति नहीं मिट सकती। वही सत्य है। जो नहीं मिट सकता है वही सत्य है। जो सदा था और सदा रहेगा वही सत्य है।
हमें अपने भीतर भी उसे खोज लेना है जो नहीं मिट सकता है। लेकिन उसे हम तभी खोज पाएंगे, जब हम उसे पहचान लें जो मिट सकता है। अगर हमने जो मिट सकता है उसी के साथ आइडेंटिटी कर ली है, हमने समझ लिया है कि यही मैं हूं, तो फिर, तो फिर बहुत कठिनाई है, सत्य का हमें कोई पता न चलेगा।
मृत्यु से हम डरते क्यों हैं? हम डरते इसीलिए हैं कि जिसे हमने समझ रखा है मैं हूं, वह तो मरेगा, उसे तो कोई नहीं बचा सकता, उसका मिटना निश्चित है, वह मरणधर्मा है। जिसे हमने मैं समझा है, उसकी मृत्यु होगी ही। इसलिए हम डरे हुए हैं। और उसे हम जानते नहीं जो नहीं मरेगा। इसलिए हम अभय नहीं हैं। समाधि अभय में ले जाती है। उसके दर्शन करा देती है जो नहीं मिटेगा, जो नहीं मिट सकता है।
लेकिन ध्यान रहे, मैं कभी साक्षी नहीं हो सकता हूं और मैं कभी परमात्मा से नहीं मिल सकता हूं। इसलिए परमात्मा से मिलने की जिद मत करना।
और यह सोच कर मत जाना कि मैं, क ख ग नाम का आदमी, परमात्मा से मिल जाऊंगा।
मेरा मिलना कभी भी नहीं होगा। क्योंकि जब तक मैं हूं, तब तक परमात्मा न हो

सकेगा। और जब मैं नहीं रह जाऊंगा तब वह होगा। अब तक किसी का परमात्मा से मिलना नहीं हुआ। क्योंकि मिलने का मतलब होता है, दोनों मौजूद हों। दो में से एक ही रहता है। जब तक मैं रहता हूं तब तक वह नहीं रहता और जब वह होता है तब मैं नहीं रहता। मिलन हुआ ही नहीं कभी।
कबीर ने कहा हैः उसकी गली बहुत संकरी है, उसमें दो नहीं समाते, उसमें
एक ही समाता है। जब तक मैं हूं तब तक वह नहीं, जब वह होता है तब मैं नहीं होता हूं।
साक्षी बच सकता है, मुझे खोना पड़ेगा। इसलिए मैंने कहा कि मैं मिट रहा हूं, मैं मर रहा हूं, इस भाव को अगर बहुत गहरा करें, तो जो शेष रह जाएगा वह साक्षी है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि मैं मिट रहा हूं, ऐसा भाव करने से मैं कैसे मिटूंगा?

इसलिए मिट जाइएगा कि मैं हूं, यह भी भाव का ही परिणाम है, यह कोई सत्य नहीं है। अगर मैं यहां बैठ कर यह भाव करूं कि मकान मिट रहा है, तो मकान नहीं मिटेगा। क्योंकि मकान मेरे भाव पर निर्भर नहीं है। मैं कितना ही भाव करूं कि मकान मिट रहा है, मकान मिट रहा है... आंख खोल कर देखूंगा, पाऊंगा कि मकान अपनी जगह है। क्योंकि मकान मेरे भाव से निर्मित नहीं है। लेकिन अगर मैं भाव करूं कि मैं मिट रहा हूं, तो मैं मिट जाऊंगा, क्योंकि मेरा होना मेरा भाव ही है। इसलिए दूसरे भाव से मिट सकता है; विपरीत भाव से मिट सकता है। आपको पता होना चाहिए, कुछ बीमारियां हैं जो इलाज से कभी ठीक नहीं होती हैं। वे इसलिए ठीक नहीं होतीं कि पहली तो बात वे बीमारियां झूठी हैं और इलाज सच्चा है। तो वैसा आदमी और बीमार हो जाएगा। अगर झूठी बीमारी का सच्चा इलाज होगा तो मुश्किल पड़ जाएगी। अगर एक आदमी को सांप ने काटा हो, तो सांप के काटने के लिए जो इंजेक्शन दिया जाना चाहिए वह उसको लाभ करेगा। लेकिन अगर एक आदमी को सांप ने काटा ही न हो और उसको ख्याल पैदा हो गया हो कि मुझे सांप ने काटा, काटा चूहे ने हो या सपने के सांप ने काटा हो, तो उसको इंजेक्शन देना बहुत खतरनाक हो जाएगा। जितना सांप के काटने से खतरा नहीं है, उतना इंजेक्शन खतरनाक हो जाएगा। झूठी बीमारी के लिए झूठा इलाज चाहिए। मैंने सुना है, एक रात एक सराय में कुछ लोग मेहमान थे। और एक आदमी सुबह चार बजे उठा और अपनी यात्रा पर आगे निकल गया। कई जगह के लोग ठहरे हुए थे, रात उन्होंने भोजन किया था। साल भर बाद वह आदमी उस सराय में वापस लौटा। उस सराय के मालिक ने उसे देखा और कहा, आप जिंदा हैं!
उस आदमी ने कहा, क्या मतलब? जिंदा क्यों नहीं रहूंगा?
उसने कहा कि अरे! लेकिन बाकी जितने लोगों ने उस रात भोजन किया था, वे
सब मर गए। फूड-पाय.जन हो गया था, भोजन में जहर हो गया था। आप जिंदा हैं, आश्चर्य! लेकिन सब लोग तो मरे हुए मिले सुबह। आप तो चार बजे निकल गए थे। उस आदमी ने इतना सुना और वहीं गिर पड़ा। उसे बहुत हिलाया, लेकिन वह तो
मर चुका था। साल भर पहले किया था भोजन! फूड-पाय.जन हो गया! साल भर बाद मरा! मर सकता है। लेकिन ऐसी बीमारी का इलाज नहीं हो सकता। अगर जहर हो गया हो भोजन में तो इलाज हो सकता है। अब इस आदमी का कैसे इलाज करिएगा? इसका इलाज करना बहुत मुश्किल है। इसकी बीमारी झूठी है। झूठी बीमारी का झूठा इलाज करना होता है।
मैं जिसे समाधि का प्रयोग कह रहा हूं, झूठा इलाज है, सच्चा इलाज नहीं है। क्योंकि आपकी बीमारी झूठी है। मैं झूठी बीमारी है। उसे मिटाने के लिए उसी तरह झूठा इलाज करना पड़ेगा। मेरे पैर में असली कांटा गड़ जाए, असली, तो दूसरा कांटा असली लाकर निकालना पड़े। लेकिन असली कांटा न गड़े, सिर्फ मुझे ख्याल हो जाए कि पैर में कांटा गड़ा है। अब असली कांटा लाकर मत निकालना, अन्यथा व्यर्थ का घाव हो जाएगा। कांटा गड़ा न हो, तो फिर झूठे कांटे की जरूरत पड़ती है।
धर्म की सारी प्रक्रियाएं झूठी प्रक्रियाएं हैं, क्योंकि अधर्म की बीमारी झूठ है। समस्त योग झूठी प्रक्रिया है। समस्त साधना झूठी प्रक्रिया है। इसलिए झूठी प्रक्रिया है कि जिसे हम मिटाने चल रहे हैं, वह

बीमारी झूठी है। वहां कोई आदमी बीमार नहीं है। मैं अगर होता, तो हमें कोई असली तलवार खोज कर मैं को काटना पड़ता।
रामकृष्ण के अंतिम जीवन में एक कीमती घटना है। रामकृष्ण जीवन भर तो काली की पूजा में रत रहे। आखिरी क्षणों में उन्हें ऐसा लगने लगा कि क्या बस यही है सत्य, आखिरी! एक संन्यासी ठहरा हुआ था, तोतापुरी। उसने कहा कि कब तक काली वगैरह में उलझे रहोगे? ये सब कल्पनाएं हैं।
तो रामकृष्ण ने कहा, मैं क्या करूं? इस कल्पना के ऊपर कैसे उठूं? तोतापुरी ने कहा, आंख बंद करो और काली से छुटकारा पाओ।
रामकृष्ण आंख बंद करते तो काली की मूर्ति खड़ी हो जाती। जीवन भर उसी को साधा था। वे कहते कि उसको कैसे हटाऊं? वह नहीं हटती है, वह नहीं मिटती है। तो तोतापुरी ने कहा कि तुम एक तलवार उठा कर दो टुकड़े कर दो।
तो रामकृष्ण ने कहा कि तलवार कहां उठाऊं भीतर? तलवार कहां है?
तोतापुरी ने कहा, जब कल्पना से ही काली को भीतर खड़ा कर लिया, तो एक कल्पना की ही तलवार उठा कर दो टुकड़े कर दो। काली को कहां से लाए हो भीतर? कल्पना से ही खड़ा किया था।
रामकृष्ण भीतर जाते थे, लेकिन हिम्मत न जुटा पाते थे तलवार उठाने की। काली पर और तलवार कैसे उठाएं? इतने दिन में साधा-संवारा! भक्त भगवान के प्रति बहुत कमजोर हो जाता है। कल्पित भगवान के प्रति बहुत कमजोर हो जाता है। क्योंकि उसको खुद ही तो बनाया है, अब उसे मिटाए कैसे? तलवार पकड़ते होंगे, छूट जाती होगी। बार-बार कहते थे कि नहीं होता। तो तोतापुरी ने कहा, बस आखिरी कर लो, अन्यथा मैं चला जाऊं। इस बच्चों के खेल में मुझे मत उलझाओ। तो तोतापुरी एक कांच का टुकड़ा लेकर बैठ गया और उसने कहा कि तुम आंख बंद करो, अंदर जाओ, और मैं तुम्हारे माथे पर कांच से काटूंगा। और जब यहां खून की धार बहने लगे और कांच से मस्तिष्क कटे, तब तुम एक दफा हिम्मत उठा कर तलवार चला ही देना।
रामकृष्ण ने हिम्मत की, और जब तोतापुरी ने माथा काटा तो उन्होंने भी भीतर काली को काट दिया। काली दो टुकड़े होकर गिर गई। झूठी तलवार थी, झूठी काली थी। रामकृष्ण खाली हो गए। बाद में उन्होंने कहा, आखिरी बाधा, दि लास्ट बैरियर, आखिरी बाधा गिर गई।
जिसे हम मैं कहते हैं वह भी झूठा है। उस मैं को गिराने के लिए झूठे उपाय करने पड़ें। अगर समझ जाएं कि झूठा है, तब तो उपाय करने की भी जरूरत न रहे। लेकिन नहीं समझ पाते हैं, तो फिर उपाय करने पड़ते हैं।
इसलिए जो समझता है उसके लिए न ध्यान है, न समाधि है, न योग है। जो समझता
है उसके लिए जगत में कुछ भी नहीं है। उसे कुछ करने को नहीं है। लेकिन बड़ी मुश्किल है, हम समझ नहीं पाते। नहीं समझ पाते हैं, तो कुछ झूठा इलाज करना पड़ता है। और झूठे इलाज से झूठी बीमारी को तोड़ देना पड़ता है। जब दोनों बीमारियां विदा हो जाती हैं, तो जो खाली जगह रह जाती है वही सत्य है।

अब एक मित्र ने कहा है कि रात जिसको आप समाधि कह रहे थे, वह तो आटो- हिप्नोसिस या हिप्नोटिज्म जैसी मालूम हो रही थी, सम्मोहन जैसी मालूम हो रही थी।

मालूम नहीं हो रही थी, है ही। मैं एक सम्मोहन है। जिसको हम कहते हैं मैं, यह एक सम्मोहन है जो हमने पैदा किया हुआ है। इस मैं को तोड़ने के लिए हमें विपरीत, एंटी-हिप्नोटिक सजेशन, विपरीत सम्मोहक सुझाव देकर इसे तोड़ देना पड़ेगा।
मैं हमारा एक सम्मोहन है, इससे ज्यादा नहीं है। यह हमारा एक भ्रम है
कि मैं हूं। जो है वह तो विराट है। जो है उसकी तो कोई सीमा नहीं है। जो है वह तो अनंत है। जो है वह मुझसे पहले से है और मेरे बाद है। लेकिन मैं हूं, यह सिर्फ हमारा एक सम्मोहन है। यह हमारी बचपन से पकड़ी गई जिंदगी की एक आदत है। कामचलाऊ आदत है। उसे हमने पकड़ लिया है। उसे हमने पकड़ लिया है, तो हम... अगर आपने कभी सम्मोहन का कोई प्रयोग देखा हो तो आप बहुत हैरान हो जाएंगे। सम्मोहन में हम जो मान लेते हैं, वही सत्य हो जाता है। जो हम

स्वीकार कर लेते हैं, मन उसी के लिए राजी हो जाता है। सम्मोहन हमारे चित्त में उन सत्यों को पैदा कर देता है, जो हैं ही नहीं।
हम सब भी ऐसे ही जीते हैं। अगर एक स्त्री आपको बहुत प्रीतिकर लगने लगे
या एक पुरुष बहुत प्रीतिकर लगने लगे, तो आप शायद सोचते होंगे कि सच में वहां सौंदर्य है। सब सौंदर्य आपके द्वारा आरोपित और सम्मोहन है। इसलिए हर मुल्क में सौंदर्य की जैसी आदतें हैं, वैसा सौंदर्य होता है। अफ्रीका में कोई कौम स्त्रियों के बाल घोट कर सिर संन्यासियों जैसा कर देती है और मानती है कि बहुत सुंदर है। जिस स्त्री की खोपड़ी जितनी चमकदार निकल आए, वह उतनी सुंदर हो जाती है। आप उस स्त्री को देख कर भागेंगे तो पीछे नहीं लौटेंगे। लेकिन वहां कोई उसके लिए दीवाना हो सकता है। आखिर सिर घुटी स्त्री! हम सोच भी नहीं सकते! हम तो अपने मुल्क में संन्यासिनियों का सिर घुटवाते हैं। वह इसीलिए घुटवाते हैं, ताकि कोई पुरुष मोहित न हो जाए। वह इसीलिए घुटवाते हैं। हम संन्यासी-संन्यासिनी को कुरूप बनाने की कोशिश करते हैं, ताकि आप सम्मोहित न हो जाएं, किसी भांति उसके प्रति आकर्षित न हो जाएं। इसलिए सब तरह की अग्लीनेस पैदा करने की कोशिश करते हैं साधु- संन्यासी में कि वह कुरूप हो, कि आपके सम्मोहन के जो नियम हैं... लेकिन अगर हमारी संन्यासिनी अफ्रीका चली जाए, तो उसको बड़े प्रेमी मिल सकते हैं। कोई कौम है जो मानती है कि ओंठ पतले हों तो ही सुंदर हैं। कोई कौम मानती है कि ओंठ जितने चौड़े हों, उतने ही सुंदर हैं। तो ओंठों को चौड़ा करने के भी उपाय करते हैं। ओंठों में पत्थर बांध लेते हैं, लटका लेते हैं पत्थर बचपन से, ताकि ओंठ चौड़े से चौड़े हो जाएं। और जब ओंठ बहुत चौड़ा हो जाता है कि चेहरे पर कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता, सिर्फ ओंठ ही दिखाई पड़ने लगता है, तब स्त्री परम सुंदर हो जाती है, उसको प्रेमी मिल जाते हैं।
थोड़ा सोचने जैसा है कि जिसको हम सौंदर्य कहते हैं, वह है या हमारा सम्मोहन है? या हमने आदत बना रखी है?
अब यह आपको पता ही है, आज से पचास साल पहले कैक्टस सुंदर नहीं था। और
घर में अगर कोई धतूरे का पौधा लगा लेता, तो हम उसे पागल कहते, कि दिमाग खराब हो गया। अब कैक्टस बड़ा बुर्जुआ हो गया है, बड़ा सुसभ्य हो गया है। अब कैक्टस ग्रामीण न रहा। अब एकदम जिस आदमी के घर में कैक्टस नहीं है, वह अनकल्चर्ड है, वह सुसंस्कृत नहीं है। अब जो ठीक से शिक्षित आदमी है, उसके घर में कांटों वाला पौधा जरूरी है। पचास साल पहले गुलाब सुंदर था, अब कैक्टस ने गुलाब की जगह ले ली है। उसने गुलाब को कहा, राजा, उतरो सिंहासन से! बहुत दिन तुम रह लिए, अब मजदूर आते हैं, अब हम ऊपर आते हैं। अब कैक्टस बहुत दिन गरीब शूद्र की तरह रह लिया, अब जगह खाली करो!
गुलाब हट गया है, कैक्टस आ गया है। अब कैक्टस बैठा है। अब कैक्टस बड़ा सुंदर मालूम पड़ रहा है, जो कभी सुंदर नहीं मालूम पड़ा था। कैक्टस कभी सुंदर था? कभी सुंदर न था। कोई आश्चर्य नहीं है। आदत और नया सम्मोहन। ऊब गए हम गुलाब के फूल से। चिकनापन भी ऊबा देता है, फिर खुरदुरेपन की इच्छा शुरू हो जाती है। अब खुरदुरापन अच्छा लगता है। सब चीजों से आदमी ऊब जाता है। फिर नये सम्मोहन पैदा करता है। नये सम्मोहन पैदा करता चला जाता है। जिसे हम सौंदर्य कहते हैं, वह हमारा सम्मोहन है।
अब चीन में तो चपटी नाक सुंदर होती है; गाल की हड्डियां उठी हुई हों तो सुंदर होती हैं। हमारे मुल्क में गाल की हड्डियां उठी हों तो फिर सुंदर होना बहुत मुश्किल हो जाता है। सुंदर क्या है? हमारा थोपा हुआ भाव है। इसलिए पृथ्वी पर हजारों तरह के सौंदर्य हैं, सब तरह के सौंदर्य हैं। ऐसा कोई आदमी नहीं है जिसे किसी कोने में सुंदर न माना जा सके। और ऐसा भी कोई आदमी नहीं है जो किसी दूसरे कोने में असुंदर न हो जाए। हमारी आरोपित धारणाएं हैं। सुंदर हमें दिखाई पड़ने लगता है, क्योंकि हमने देखना शुरू कर दिया। हम जिसमें सौंदर्य देखने लगें वही सुंदर हो जाता है।
मेरे एक मित्र सोवियत रूस गए हुए थे। उनके हाथ बड़े सुकोमल थे। कभी कोई काम नहीं किया। स्त्रैण थे हाथ। उनका हाथ हाथ में लें और आंख बंद कर लें, तो ऐसा न लगे कि पुरुष का हाथ हाथ में है, स्त्री का हाथ हाथ में है। आंख खोल कर देखें तो ही पता चले कि पुरुष का हाथ है। हाथ बहुत कोमल थे। वे रूस पहली दफा गए। तो वहां जिस आदमी, जो उनका स्वागत करने आया था एयरपोर्ट पर,

उसने हाथ मिला कर हाथ पीछे खींच लिया। तो वे कुछ हैरान हुए! उन्होंने कहा, क्या हुआ?
उस आदमी ने कहा, आप जरा हाथ के प्रति सावधान रहना! रूस में ऐसे हाथ को
हम शोषक का, खून पीने वाले का हाथ समझते हैं। आपके हाथ में मजदूर के गट्ठे नहीं हैं। आपका हाथ जो भी छुएगा, हाथ खींच लेगा ग्लानि से। आप अच्छे आदमी नहीं हैं।
यहां तो उनका जो भी हाथ छूता था, वह कहता था, धन्य हैं आप, इतना सुंदर हाथ! रूस में, वे कहने लगे, मैं अपने हाथ खीसों में डाल कर रखने लगा। क्योंकि दो-चार दफे जिससे भी हाथ मिलाया, उसने ही हाथ ऐसा खींचा कि किसी गलत आदमी का हाथ छू गया।
रूस का सम्मोहन बदल गया है। अब वे कहते हैं, हाथ पर गट्ठे होने चाहिए, मजदूरी की छाप होनी चाहिए, तो अच्छा आदमी है। अगर मजदूरी की छाप नहीं है तो अच्छा आदमी नहीं है। अगर महावीर या बुद्ध चले जाएं रूस में, मुश्किल में पड़ जाएं, हाथ पर मजदूर की गट्ठी की छाप नहीं है। और हम? हम कहते हैं, चरणकमल! आपके हाथ कमल की भांति हैं; आपके पैर कमल की भांति हैं। रूस में वे कहेंगे, पैर आपके? खूनी के हैं, हत्यारे के हैं। हाथ? हाथ आपके दुष्ट के हैं। ये हाथ न चलेंगे यहां रूस में! सम्मोहन बदल गया उन्नीस सौ सत्रह से। नया सम्मोहन पैदा कर लिया। अब वे उसके अंतर्गत जी रहे हैं।
सौंदर्य हमारा सम्मोहन है। कुरूपता भी हमारा सम्मोहन है। हमारी जिंदगी में बहुत से सम्मोहन हैं जो हमें ख्याल में नहीं आते। और जब हमारे ख्याल में नहीं आते तो हम उनमें जीए चले जाते हैं। अब अगर एक आदमी अपने सिर के बाल उखाड़ने लगे, तो आप उसको पागलखाने भेज देंगे। लेकिन अगर वह जैन मुनि हो जाए, फिर आप उसके पैर छुएंगे। क्या बात है? यह आदमी, सिर के बाल उखाड़ता, अगर यह जैन मुनि न हो तो पागलखाने जाएगा। लेकिन अगर जैन मुनि हो तो चलेगा। क्यों? क्योंकि वे जैन मुनि के आस-पास जो लोग हैं, वे बाल उखाड़ने की बात से हजारों साल से सम्मोहित हैं। वे कहते हैं, यह तपस्वी का लक्षण है।
अगर आप स्नान न करें, तो आपकी पत्नी आपको घर के बाहर कर देगी। लेकिन अगर आप जैन मुनि हो जाएं और स्नान न करें, तो आपकी पत्नी ही पैर छुएगी, कि आप परम तपस्वी हैं, आप स्नान नहीं करते हैं। क्योंकि स्नान न करने को कोई बहुत दिन से सम्मोहित हो गया। वह कहता है, स्नान करना, यह भोगियों की बात है, त्यागी स्नान नहीं करते। त्यागी को स्नान की क्या जरूरत है? उसको शरीर को सजाने का कोई सवाल नहीं है।
हम जिस चीज से सम्मोहित हो जाते हैं, वह हमारे मन को पकड़ लेती है।
अब दो ही रास्ते हैं। या तो हम समझ जाएं और समस्त सम्मोहन से मुक्त हो जाएं। समझ मुक्ति ला सकती है। अगर कोई व्यक्ति अपने जीवन-व्यवहार में, उठने-बैठने में, चलने में, सोचने में, हर बात में इस बात की खोज कर ले कि मैं सम्मोहित होकर जी रहा हूं, तो सम्मोहन टूटना शुरू हो जाता है। लेकिन अगर हम यह न समझ पाएं, तो फिर एंटी-हिप्नोटिक, सम्मोहन के विपरीत सम्मोहन की जरूरत पड़ जाती है।
जो लोग प्रज्ञा को उपलब्ध हो सकते हैं, अंडरस्टैंडिंग को, उनके लिए किसी ध्यान और समाधि की कभी कोई जरूरत नहीं है। नहीं जो उपलब्ध हो सकते, जो कहते हैं, कांटा तो हमें गड़ा ही है, असली गड़ा है, हम कैसे मानें कि कांटा नकली है! और कांटा गड़ा नहीं है उनके पैर में। अब उनके लिए हमें एक कांटा और भी नकली ईजाद करना पड़ेगा, जो उनके पुराने कांटे को निकाले।
तो जिसे मैंने रात कहा है, वह सम्मोहन ही है। आपके पूर्व-सम्मोहनों को नष्ट करने के लिए, उनको विदा करने के लिए उनसे विपरीत सम्मोहन की स्थिति पैदा करनी जरूरी है। लेकिन अगर आपको लगता हो कि नहीं, कोई जरूरत नहीं है विपरीत सम्मोहन की, मैं समझ सकता हूं कि यह सम्मोहन है और समझपूर्वक मुक्त हो जाऊंगा। इससे शुभ कुछ भी नहीं है। अगर आप समझपूर्वक मुक्त हो सकें तो इससे शुभ कुछ भी नहीं है।
मैंने सुना है, एक आदमी दो वर्षों से पैरालाइज्ड था, लकवा लग गया था। हिल-डुल नहीं सकता था; उठ नहीं सकता था। चिकित्सक हार गए थे चिकित्सा करते- करते, ठीक नहीं होता था। ठीक हो जाता, अगर सच में लकवा लगा होता। लकवा लगा न था। चिकित्सक मुश्किल में थे, ठीक कैसे हो? बीमारी थी नहीं। लेकिन वह आदमी

कैसे माने! जिसका हाथ न हिलता हो, जिसका पैर न हिलता हो--वह आदमी कैसे माने कि बीमारी झूठी है!
फिर एक दिन आधी रात मकान में आग लग गई। घर भर के लोग बाहर हुए। वह जो लकवे से लगा आदमी था, वह भी दौड़ कर बाहर पहुंच गया। वह दो साल से नहीं हिला था। जब वह बाहर आ गया, घर के लोगों ने कहा, क्या आप भी चल गए?
वह आदमी वहीं गिर पड़ा! उसने कहा, मैं कैसे चल सकता हूं? यह कैसे हुआ?
यह कुछ समझ में नहीं आता। क्योंकि मैं तो लकवे से पीड़ित हूं।
अब यह आदमी अगर समझ सके, तो लकवे के बाहर हो जाए। नहीं तो इसके मकान में झूठी आग लगानी पड़े, ताकि यह बाहर निकल आए। अगर यह कहे कि मेरा लकवा असली है, तो फिर हमें एक आग का इंतजाम करना पड़े, जिसमें यह दौड़ कर बाहर आ जाए। अगर यह समझ जाए तो बात खतम हो गई, फिर किसी मकान में आग लगाने की कोई जरूरत न रही। समझ ले!
लेकिन बहुत कठिन है। कठिन इसलिए है कि हम अपनी बीमारियों को प्रेम करने लगते हैं। और शारीरिक बीमारियों से तो हम छुटकारा चाहते हैं, मानसिक बीमारियों को हम जोर से पकड़ लेते हैं। क्यों? क्योंकि मानसिक बीमारियों पर ही हमारा होना निर्भर है।
सबसे बड़ी बीमारी तो है मैं की, ईगो की। अगर वही छूट जाए तो हम कहां होंगे? तो आदमी डरता है। वह अपने मैं को जोर से पकड़े रहता है। अगर आप उससे, उसके पैर में धक्का लग जाए आपके पैर का, या भीड़ में आपका धक्का लग जाए, तो वह कहेगा, देख कर नहीं चल रहे हैं! जानते नहीं मैं कौन हूं!
खुद भी पता नहीं है कि कौन है, दूसरे से कहता है, जानते नहीं मैं कौन हूं! उसके, वह अपने मैं को बचा रहा है, बचा रहा है। धन कमा रहा है। गरीब भी दिखलाना चाहता है अपने मैं को, लेकिन दिखाने के साधन नहीं होते उसके पास। यही गरीब की तकलीफ है। अमीर साधन खोज लेता है। उसके मैं के लिए सहारा मिल जाता है। वह कहता है, हां, यह रहा मेरा मैं और ये रहे मेरे साधन। वह एक बड़ा मकान बनाता है। बड़ा मकान रहने के लिए जरूरी नहीं है। लेकिन बड़ा मकान बड़े मैं को प्रकट करने के लिए बहुत जरूरी है। रहा तो शायद बहुत छोटे मकानों में जा सके, और शायद बड़े मकान से ज्यादा सुविधा से भी रहा जा सके, लेकिन... अभी मैं एक घर में मेहमान था। तो उस घर में नहीं तो कम से कम सौ कमरे होंगे। पति-पत्नी अकेले हैं। सारा मकान खाली है। कोई पंद्रह-बीस नौकर रखने पड़ते हैं जो पूरे मकान को साफ करते रहें। मैंने उनसे पूछा कि इतना बड़ा मकान, इतने नौकर-चाकर, सिर्फ खाली साफ करने के लिए! किसलिए है यह? आपके रहने के लिए तो यह बहुत जरूरत से ज्यादा है।
वे हंसने लगे। उनकी मुस्कुराहट में उनके अहंकार ने बड़ा विस्तार पा लिया। उनकी हंसी में उन्होंने कहा कि हम कोई साधारण आदमी नहीं हैं जो हम एक कमरे में रह लें, बड़े आदमी को कई कमरों में रहना पड़ता है। हम कोई साधारण आदमी नहीं कि एक बिस्तर पर सो जाएं, बड़े आदमी को कई बिस्तर पर सोना पड़ता है। हम कोई साधारण आदमी नहीं कि एक ही कपड़ा पहन कर निकल जाएं बाजार में, बड़े आदमी को कई कपड़े इकट्ठे पहनने पड़ते हैं। उनकी मुस्कुराहट फैल गई। उनकी मुस्कुराहट ने कहा कि वी कैन अफर्ड। उनकी मुस्कुराहट ने कुछ कहा नहीं, लेकिन कहा कि नहीं, हम अफर्ड कर सकते हैं, हम सौ कमरे भी रख सकते हैं। वह मैं, उस मैं की बीमारी को हम सब तरफ से पोसते हैं। इसलिए छोटी कुर्सी दुख देने लगती है, क्योंकि बड़ी कुर्सी वाले का मैं बड़ा प्रकट हो सकता है। छोटी कुर्सी वाले को जरा सिकुड़ कर मैं प्रकट करना पड़ता है। हां, अपने से छोटी कुर्सी वालों के सामने जरा वह फैल सकता है। ऊपर की कुर्सी वाला आता है, तो वह एकदम दब कर और पूंछ हिलाने लगता है। तो उसे ऐसा लगता हैः उस जगह कब पहुंच जाऊं जब कि मुझे किसी की तरफ पूंछ न हिलानी पड़े और सारे लोग मेरे चारों तरफ पूंछ हिलाएं।
इसलिए दौड़ चलती है कि कैसे राष्ट्रपति हो जाऊं! कैसे प्रधानमंत्री हो जाऊं! फिर जो हो जाए, वह जब तक मर न जाए, उस जगह को नहीं छोड़ता। क्योंकि जगह छोड़ दे तो मुश्किल में पड़ जाता है। फिर नीचे उतर आता है। फिर मैं को सिकोड़ना और भी मुश्किल हो जाता है। मैं अगर फैल जाए, तो फिर सिकोड़ना बहुत ही कष्टपूर्ण हो जाता है। फिर बहुत ही मुसीबत हो जाती है उसे वापस अपनी जगह लौटाना। इसलिए अगर एक मिनिस्टर नीचे उतर आए मिनिस्टरी से, तो उसकी बड़ी

तकलीफ हो जाती है। तकलीफ? तकलीफ मिनिस्टरी खोने की उतनी नहीं होती, तकलीफ इस बात की हो जाती है कि मिनिस्टर का अहंकार फैल गया होता है, फिर नीचे सिकुड़ जाना पड़ता है।
एक गांव में मैं मेहमान था और रास्ते से गुजरता था। तो उस प्रदेश के, पीछे कोई मुख्यमंत्री थे, वे मेरे साथ थे। अब तो वे नहीं हैं, अब तो भूतपूर्व हो गए वे, तो वे मेरे साथ थे। रास्ते में कार बिगड़ गई। और सुनसान रास्ता था और बहुत कम गाड़ियों के गुजरने की उम्मीद थी। रात का वक्त था। तो वहां से एक नॉन-स्टाप बस गुजरती थी। तो उन्होंने कहा कि नहीं, कोई चिंता की बात नहीं, उसे रुकवा लेंगे। वह रुकती तो नहीं है, लेकिन रुकवा लेंगे। भूतपूर्व मुख्यमंत्री थे, सोचा रुकवा लेंगे। तो एक नाके पर, जहां एक पुलिस का आदमी सोता था, उसको जाकर उन्होंने उठाया। और उन्होंने कहा कि वह जो बस यहां से गुजरती है, जो रुकती नहीं है, उसे रोकना है, क्योंकि हमारी गाड़ी बिगड़ गई।
उस आदमी ने, मैं मौजूद था, उस आदमी ने कहा कि महाराज... वे ब्राह्मण हैं, अभी भी ब्राह्मण होना मुख्यमंत्री होने के लिए बड़ा जरूरी है... उसने कहा, महाराज, बहुत मुश्किल है, वह न रुकेगी।
तो उन्होंने कहा, क्या कहते हो! न रुकेगी? जानते नहीं हो कि मैं कौन हूं!
उसने कहा, मैं भलीभांति जानता हूं। आपको और न जानूं! लेकिन आप भूतपूर्व हैं। उस कांस्टेबल ने कहा, आप भूतपूर्व हैं। बस न रुकेगी।
वे मुख्यमंत्री एक दफा उस कांस्टेबल की तरफ देखें, एक दफा मेरी तरफ देखें। अब उनके अहंकार को ऐसी पीड़ा जो उस दिन हुई वह कभी न हुई होगी। एकदम सिकुड़ गए, जब उसने कहा, भूतपूर्व हैं आप, पहचानता अच्छी तरह हूं। लेकिन बस न रुकेगी, नॉन-स्टाप है, वह नहीं रुकती।
अब एक कांस्टेबल जो है मुख्यमंत्री को पूंछ हिलवा दिया। कांस्टेबल को
भी तो कभी-कभी मौका मिलना चाहिए। कई बार इनके आस-पास घूमा होगा, आज इनको भी घुमा दिया। अब उन्हें ऐसा लगने लगा कि अगर पुराना जमाना होता तो शायद पृथ्वी माता से कहते कि फट जाओ, और समा जाते उसमें मुख्यमंत्री। मैंने उनसे कहा कि मत कहिए, पृथ्वी माता से कुछ मत कहिए, लौट चलिए। ठीक है, उसको भी मौका मिला है, आपको मिल चुका है। उसको भी मौका मिला है, सबको मिलने दीजिए।
हमारा जो अहंकार है वह ऐसा रोग है जिसे हम प्रेम करते हैं, तो उसे छोड़ें कैसे? उसे हम बचाते फिरते हैं। अगर कोई उसे तोड़ने वाला है तो उसे हम दुश्मन समझते हैं। तो हम उसे कैसे तोड़ेंगे? हमारी मानसिक बीमारियां हमें बड़ी प्रीतिकर हैं। हमारे मानसिक इल्यूजंस, भ्रम बड़े प्रीतिकर हैं। हमने उन्हें खड़ा किया है, हमने उन्हें पाला है, पोसा है, पानी सींचा है, खाद दी है, मेहनत की है, बड़ा किया है किसी तरह। हम उनको कैसे सिकोड़ लें?
समाधि में जिसे जाना है, या तो वह समझ ले कि यह अहंकार की सारी की सारी यात्रा एक आटो-हिप्नोसिस है, एक आत्म-सम्मोहन है, जो मैं व्यर्थ ही अपने ऊपर थोपे चला जा रहा हूं। यदि यह समझ में आ जाए, तब किसी ध्यान की कोई भी जरूरत नहीं है। लेकिन अगर यह समझ में न आ सके, तो फिर मैं मानता हूं कि हमें इससे उलटा प्रयोग शुरू करना चाहिए। हमें मैं को मिटाने का भाव करना चाहिए। शायद जिस तरह हमने मैं को बनाया है, उसी तरह हम उसे मिटा भी सकें। अगर भाव से ही बना है, तो विपरीत भाव से मिट जाएगा। और तब खाली जगह रह जाएगी।
इसलिए सम्मोहन के मैं विरोध में भी हूं और पक्ष में भी। विरोध में इसलिए हूं कि सम्मोहन अगर भ्रम में ले जाता हो तो मैं विरोध में हूं, लेकिन अगर सम्मोहन पुराने भ्रमों को तोड़ता हो और रिक्त में ले आता हो तो मैं पक्ष में हूं। पाजिटिव सम्मोहन के मैं विरोध में हूं, निगेटिव सम्मोहन के मैं पक्ष में हूं। यह भी सम्मोहन है कि मैं यह हूं और यह भी सम्मोहन है कि मैं कुछ भी नहीं हूं। लेकिन "मैं हूं" इस सम्मोहन के मैं विरोध में हूं, क्योंकि यह सत्य से निरंतर दूर ले जाएगा। "मैं नहीं हूं" इस सम्मोहन के मैं पक्ष में हूं, क्योंकि यह सत्य के निरंतर पास ले आएगा।

और ध्यान रहे, रास्ता तो वही होता है दूर जाने के लिए भी और पास आने के लिए भी, सिर्फ रुख बदल लेना पड़ता है। अगर मुझे आपके पास आना है, तो चेहरा आपकी तरफ करके आना पड़ता है। और अगर आपसे दूर जाना है, तो आपकी तरफ पीठ करके जाना पड़ता है। रास्ता वही होता है। अभी जिस रास्ते से आप घर से यहां तक आए हैं, उसी रास्ते से वापस भी लौटिएगा। लेकिन आप कभी अपने मन में यह न सोचिएगा कि जिस रास्ते से हम गए थे, उसी रास्ते से वापस कैसे लौट सकते हैं? वह रास्ता तो घर से दूर ले जाने वाला है! नहीं, वह रास्ता घर के पास भी ले आएगा। फर्क इतना पड़ेगा कि जब दूर आए थे तो घर की तरफ पीठ करनी पड़ी थी और जब पास आ रहे हैं तो घर की तरफ मुंह करना पड़ेगा।
सम्मोहन दूर ले जा रहा है हमें, पीठ कर ली है अपनी तरफ; सम्मोहन पास ले आएगा, अगर मुंह कर लें अपनी तरफ।
तो मैं सम्मोहन के विरोध में भी हूं। ऐसे सम्मोहन के विरोध में हूं जो आपको, किसी कल्पना को मजबूत करने के लिए किया जाता है। और ऐसे सम्मोहन के बिल्कुल पक्ष में हूं जो कल्पनाओं को विसर्जित करने के लिए किया जाता है और निर्विकल्प कर देता है।
जैसे, मैं इस सम्मोहन के विरोध में हूं कि आप बैठ कर यह सोचें कि मैं ब्रह्म हूं, मैं ब्रह्म हूं, मैं ब्रह्म हूं। मैं इसके विरोध में हूं। लेकिन मैं इसके पक्ष में हूं कि मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं। क्या फर्क है इन दोनों में?
इनमें फर्क यह है कि ब्रह्म होने में आप एक पाजिटिव, एक विधायक सम्मोहन कर रहे हैं, जिसका आपको पता नहीं है। आपको पता नहीं है कि मैं ब्रह्म हूं, और आप थोप रहे हैं अपने ऊपर कि मैं ब्रह्म हूं। हो सकता है आप सम्मोहित हो जाएं और आपको ऐसा लगने लगे कि मैं ब्रह्म हो गया। वह भ्रम होगा, सत्य नहीं होगा। ब्रह्म होने के लिए आपको अपने को सम्मोहित करने की जरूरत नहीं है, क्योंकि ब्रह्म आप हैं ही। अगर सब सम्मोहन टूट जाएं, तो आपको पता चल जाएगा कि मैं ब्रह्म हूं।
लेकिन आपने एक दूसरा सम्मोहन पैदा कर रखा है कि मैं यह हूं, मैं यह हूं--इसका पति हूं, इसका पिता हूं, इसका बेटा हूं, इस पद पर हूं, यह मेरा धन है, यह मेरी प्रतिष्ठा है, यह मेरी पदवी है--ये सारी उपाधियां आपने अर्जित कर ली हैं कल्पना में। मैं इस सम्मोहन के पक्ष में हूं कि आप कहें--न मेरा कोई नाम है, न मैं किसी का पिता हूं, न किसी का पति हूं, न बेटा हूं--मैं कोई भी नहीं, मैं कोई भी नहीं, मैं कोई भी नहीं। और एक ऐसी घड़ी आ जाए कि आप कुछ भी न रह जाएं। जिस क्षण यह घड़ी आ जाएगी कि आपको पता चले कि आप कुछ भी नहीं हैं, उसी क्षण भीतर एक विस्फोट हो जाएगा और आपको पता चलेगा--मैं तो ब्रह्म हूं। यह आपको सोचना न पड़ेगा, यह तो हो जाएगा। यह अपने से हो जाएगा। यह विस्फोट होगा। आप सिर्फ जगह खाली कर दें, आप मंदिर से सब मूर्तियां हटा दें, फिर जो मूर्ति शेष रह जाएगी वह परमात्मा की होगी। आपके हटाने के बाद, जब आपने मंदिर बिल्कुल खाली कर दिया, कोई मूर्ति न रखी, जो आपने रखी थीं, सब मूर्तियां हटा लीं, तब भी जो शेष रह जाएगा वही परमात्मा है। आपकी रखी हुई मूर्तियां आपके हाथ की मूर्तियां हैं, उनका कोई भी मूल्य नहीं है।
तो उन मित्र ने ठीक ही पूछा है, वह सम्मोहन ही है। लेकिन कहना चाहिए डी-हिप्नोटाइजेशन है। सम्मोहन, सम्मोहन तोड़ने के लिए, मिटाने के लिए। कांटा झूठा, झूठे कांटों को अलग कर देने के लिए। और अगर आपको समझ में आ जाए कि कांटा झूठा है, इसलिए है ही नहीं, फिर तो कोई सवाल नहीं है, बात खतम हो गई। फिर आपके लिए कोई सवाल शेष नहीं रह जाता। लेकिन अगर बात खतम न हो गई हो, तो फिर कांटे को निकालना पड़ेगा। वह गड़ रहा है। झूठा सही, लेकिन गड़ रहा है, अच्छी तरह दुख दे रहा है। दूसरा कांटा खोजना पड़ेगा। फिर दोनों कांटे एक-दूसरे को काट देंगे। ऋण और धन मिल कर शून्य हो जाएगा। कट जाने पर शून्य रह जाएगा। उस शून्य में स्वयं का साक्षात्कार हो सकता है।
और प्रश्न रह गए हैं, कल सुबह उनकी बात करेंगे।
लेकिन प्रश्न और उनके उत्तर से जो समझ में न आए, वह प्रयोग से समझ में
आ सकता है। तो जिन्हें सच में ही जानना है, सिर्फ सुनना नहीं है, जिन्हें सच में ही उतरना है, सिर्फ शब्द नहीं, सत्य में ही चले जाना है, वे शाम के लिए निमंत्रित हैं। शाम के लिए दो-तीन सूचनाएं ख्याल में रख लें।

घर से आते समय ही चुप होकर चलें। वहां भी पहुंच कर जहां बैठना है, चुपचाप आंख बंद करके बैठ जाएं। तैयारी लेकर आएं घर से ही, ताकि वहां पहुंचते-पहुंचते मन बिल्कुल तैयार हो गया हो। और उस एक घंटे में न तो किसी से बात करें, न किसी की फिकर करें, न किसी की तरफ देखें। उस एक घंटे में आप अकेले ही हैं। और उस एक घंटे में जितनी सामर्थ्य हो अपनी, पूरी सामर्थ्य लगा कर, अपने सब सम्मोहन काटने में, झूठे कांटों को हटाने में लग जाएं। कोई आश्चर्य नहीं है, कोई वजह नहीं है कि आज ही क्यों न उदघाटन हो सके। समय कोई बाधा नहीं है। और इस ख्याल में भी मत रहना कि पिछले जन्मों के कर्म बाधा देंगे। इस ख्याल में भी मत रहना कि भाग्य रोकेगा। इस ख्याल में भी मत रहना कि मैं पात्र नहीं हूं, अधिकारी नहीं हूं। परमात्मा को पाने के लिए प्रत्येक अधिकारी है। और परमात्मा को पाने के लिए प्रत्येक सुपात्र है। और परमात्मा को पाने के लिए कोई भी बाधा किसी जन्म के किसी कर्म से कभी नहीं पड़ती।
ऐसे ही जैसे एक भवन में अंधकार भरा हो, हजारों साल का भरा हो, और मैं आपसे कहूं--दीया जलाएं। आप कहें, हजारों साल का अंधकार है, आज दीया जलाने से कैसे मिटेगा? हजार साल दीया जलाएंगे तब मिटेगा।
नहीं; हजार साल का अंधकार हो कि करोड़ साल का, दीया जला कि मिट जाता है। अंधेरे की कोई पर्तें नहीं होती हैं। एक दिन का अंधेरा भी उतना ही अंधेरा होता है, करोड़ जन्मों का अंधेरा भी उतना ही अंधेरा होता है।
अज्ञान की कोई पर्त नहीं होती है, ज्ञान के दीये के जलते ही समस्त अज्ञान मिट जाता है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इससे कोई फर्क ही नहीं पड़ता कि कितने जन्मों तक अज्ञान में आदमी भटका है, अंधेरे में रहा है। दीया जला और अंधेरा गया। जब तक दीया नहीं जला है तब तक अंधेरा है। और ध्यान रहे, अंधेरा दीये को जलने से रोक नहीं सकता। अंधेरे के पास कोई ताकत ही नहीं है कि दीये को जलने से रोक ले। अंधेरा बिल्कुल निर्वीर्य है, इंपोटेंट है, वह कुछ कर नहीं सकता।
अज्ञान भी इंपोटेंट है, कुछ भी नहीं कर सकता। इसलिए ऐसा मत सोचें कि फिर कभी होगा। अगर ताकत लगाएं तो आज और अभी और यहीं हो सकता है।
तो रात उन सबके लिए निमंत्रण, जो उतरना चाहते हैं थोड़ा साहस करके शून्य में, ताकि उससे मिलन हो सके जो हमारा असली होना है।
मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

समाधि के द्वार पर
चौथा प्रवचन

एकाकीपन का बोध

एक फकीर के पास तीन युवक आए और उन्होंने कहा कि हम अपने को जानना चाहते हैं। उस फकीर ने कहा कि इसके पहले कि तुम अपने को जानने की यात्रा पर निकलो, एक छोटा सा काम कर लाओ। उसने एक-एक कबूतर उन तीनों युवकों को दे दिया और कहा, ऐसी जगह में जाकर कबूतर की गर्दन मरोड़ डालना जहां कोई देखने वाला न हो।
पहला युवक रास्ते पर गया--दोपहर थी, रास्ता सुनसान था, लोग अपने घरों में सोये थे--देखा कोई भी नहीं है, गर्दन मरोड़ कर, भीतर आकर गुरु के सामने रख दिया। कोई भी नहीं था, उसने कहा, रास्ता सुनसान है, लोग घरों में सोये हैं, किसी ने देखा नहीं, कोई देखने वाला नहीं था।
दूसरे युवक ने सोचा कि अगर रास्ते पर गर्दन मरोडूंगा, पता नहीं कोई बीच में निकल आए, कोई खिड़की से झांक ले। वह एक गली में गया। लेकिन अभी दिन था, उसने सोचा रात तक रुक जाऊं, पता नहीं कोई एकदम से गली में आ जाए, जहां मैं आ सका हूं वहां कोई दूसरा भी आ सकता है। उसने रात तक प्रतीक्षा की, जब अंधेरा हो गया तो उसने गर्दन मरोड़ी और गुरु के पास जाकर दे दिया।
लेकिन तीसरे युवक को पंद्रह दिन हो गए। वह अभी भी नहीं लौटा, अभी भी नहीं लौटा... । दोनों युवकों को खोजने भेजा। वे कहीं से उसे पकड़ कर लाए। वह बड़ी मुश्किल में था। वह अंधेरी रात में भी गया था। अंधेरी रात, गहरे से गहरे अंधेरे में भी बहुत कुछ था जो उसे देख रहा था। चांद-तारे देख रहे थे। तो उसने सोचा कि नीचे एक तलघर में चला जाऊं। वह एक तलघर में गया। वहां चांद-तारे तो न थे, लेकिन जब गहरे अंधेरे में जाकर उसने कबूतर की गर्दन पर हाथ रखा, तो कबूतर देख रहा था, उसकी दो आंखें चमक रही थीं। तो उसने फिर कबूतर की आंखें बांध दीं, ताकि कबूतर न देख सके। और जब वह उसकी गर्दन को मरोड़ रहा था, तब उसे ख्याल आया--गहन अंधकार था, कोई भी न था, कबूतर की आंखें बंद थीं--लेकिन उसे ख्याल आया कि मैं तो देख ही रहा हूं, और गुरु ने कहा थाः कोई भी न देखता हो। तब वह मुश्किल में पड़ गया। और जब उसके साथी उसे पकड़ कर लाए तो उसने कबूतर वापस लौटा दिया। और उसने कहा, यह न हो सकेगा। क्योंकि मैं कितने ही अंधकार में चला जाऊं, कोई न देखे, कम से कम मैं तो देखूंगा! और आपने कहा था, जहां कोई भी न देखता हो।
तो उस गुरु ने दो युवकों को तो विदा कर दिया कि तुम जाओ, तुम बहुत गहरी खोज न कर सकोगे। तीसरे युवक को रोक लिया, क्योंकि एक बहुत गहरे अनुभव पर वह पहुंचा था--कि गहनतम अंधकार में भी मैं तो शेष रह ही जाता हूं देखने वाला। समाधि का भी पहला चरण गहन अंधकार है। क्योंकि जब सब तरफ अंधेरा हो जाता है तो चेतना को बाहर जाने का उपाय नहीं रहता, चेतना अपने पर वापस लौट आती है।
इसीलिए तो रात हम सोते हैं, अगर प्रकाश हो तो नींद में बाधा पड़ती है, क्योंकि चेतना को बाहर जाने के लिए मार्ग होता है। अंधकार हो तो चेतना अपने पर वापस लौट आती है। अंधकार में मार्ग नहीं है किसी और को देखने का, इसलिए अपने को ही देखने की एकमात्र शेष संभावना रह जाती है।
पर अंधकार के प्रति हमारा भय है। इसलिए हम अंधेरे में कभी भी नहीं जीते। अंधेरा हुआ कि हम फिर सो जाएंगे। उजाला हो तो हम जी सकते हैं। इसलिए पुरानी दुनिया सांझ होते सो जाती थी, क्योंकि उजाला न था। अब नई दुनिया के पास उजाला है कि वह रात को भी दिन बना ले, तो अब दो बजे तक दिन चलेगा। बहुत संभावना है कि धीरे-धीरे रात खतम ही हो जाए, क्योंकि हम प्रकाश पूरा कर लें। अंधेरे में फिर हमें सोने के सिवाय कुछ भी नहीं सूझता, क्योंकि कहीं जाने का रास्ता नहीं रह जाता। लेकिन काश हम अंधेरे में जाग सकें, तो हम समाधि में प्रवेश कर सकते हैं।
तो पहले पांच मिनट हम गहन अंधकार में डूबेंगे। एक ही भाव रह जाए मन में कि अंधकार है, अंधकार है, चारों तरफ अंधकार है। सब तरफ अंधकार घिर गया और हम उस अंधकार में डूब गए, डूब गए, डूब गए। पूर्ण अंधकार रह गया है और हम

हैं, और अंधकार है। तो पांच मिनट पहले इस अंधकार के प्रयोग को करेंगे। फिर मैं दूसरा प्रयोग समझाऊंगा। फिर तीसरा। और अंत में तीनों को जोड़ कर फिर हम ध्यान के लिए, समाधि के लिए बैठेंगे।
तो सबसे पहले तो एक-दूसरे से थोड़ा-थोड़ा फासले पर हट जाएं। चिंता न करें बिछावन की, अगर नीचे भी बैठ जाएंगे तो उतना हर्ज नहीं है जितना कोई छूता हो। क्योंकि कोई छूता हो तो कोई मौजूद रह जाएगा, अंधेरा पूरा न हो पाएगा। तो बिल्कुल कोई न छूता हो। और इसका भी ख्याल न रखें कि दूसरा हट जाए। दूसरा कभी नहीं हटेगा; स्वयं को ही हटना पड़ेगा। तो हट जाएं, चाहे जमीन पर चले जाएं, चाहे पीछे हट जाएं। लेकिन कोई किसी को किसी भी हालत में छूता हुआ न हो। और इतने धीरे न हटें, जमीन पर बैठ गए तो क्या हर्जा हुआ जाता है! बिल्कुल सहजता से हट जाएं। एक भी व्यक्ति छूता हुआ न हो।
मैं मान लूं कि आप हट गए हैं, कोई किसी को नहीं छू रहा है। अगर अब भी कोई छू रहा हो तो उठ कर बाहर आ जाए और अलग बैठ जाए।
अब आंख बंद कर लें। आंख बंद कर लें। आंख बंद कर लें, शरीर को ढीला छोड़ दें। शरीर ढीला छोड़ दिया है, आंख बंद कर ली है। और देखें भीतर, अनुभव करें-- अंधकार, महा अंधकार है... विराट अंधकार फैल गया है... चारों तरफ सिवाय अंधकार के और कुछ भी नहीं... अंधकार है, अंधकार है, बस एकदम अंधकार ही अंधकार है... जहां तक ख्याल जाता है, अंधकार... अंधकार... अंधकार... पांच मिनट के लिए इस अंधकार में डूबते जाएं, बस अंधकार ही शेष रह जाए, छोड़ दें अपने को अंधकार में...
और पांच मिनट के अंधकार का अनुभव मन को बहुत शांत कर जाएगा। समाधि की पहली सीढ़ी ख्याल में आ जाएगी। मृत्यु की भी पहली सीढ़ी ख्याल में आ जाएगी। अनुभव करें अंधकार का... बस अंधकार ही अंधकार है चारों ओर, सब तरफ मन को घेरे हुए अंधकार है, दूर-दूर तक घनघोर अंधकार है... कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता, कुछ भी नहीं सूझता, हम हैं और अंधकार है... पांच मिनट के लिए मैं चुप हो जाता हूं, आप गहरे अंधकार को अनुभव करते हुए, करते हुए अंधकार में डूब जाएं... बस अंधकार शेष रह गया है... अंधकार और अंधकार, महा अंधकार, सब अंधेरा हो गया है... कुछ भी नहीं सूझता, अंधकार है, जैसे अंधेरी रात ने चारों ओर से घेर लिया... मैं हूं और अंधकार है... अंधकार ही अंधकार है--ड़ूब जाएं, छोड़ दें, बिल्कुल अंधेरे में डूब जाएं, अंधकार ही अंधकार शेष रह गया... अंधकार है, बस अंधकार है, अंधकार ही अंधकार है...
अनुभव करते-करते मन बिल्कुल शांत हो जाएगा... अंधकार ही अंधकार है... अंधकार ही अंधकार है... मन शांत होता जा रहा है... मन बिल्कुल शांत हो जाएगा... अंधकार ही अंधकार है... छोड़ दें, अपने को अंधकार में बिल्कुल छोड़ दें... अंधकार ही अंधकार है... बस अंधकार ही अंधकार है... छोड़ दें अंधकार में, महान अंधकार चारों ओर रह गया, मैं हूं और अंधकार है... न कुछ दिखाई पड़ता, कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता, बस अंधकार ही अंधकार मालूम होता है--ड़रें नहीं, छोड़ दें, बिल्कुल छोड़ दें... अंधकार ही अंधकार शेष रह गया है... और मन एकदम शांत हो जाएगा। अंधकार परम शांतिदायी है। मन का कण-कण शांत हो जाएगा। मस्तिष्क का कोना-कोना शांत हो जाएगा।
अंधकार में डूब जाएं, अंधकार ही अंधकार है... अंधकार ही अंधकार है... अंधकार ही अंधकार है... मन बिल्कुल शांत हो गया है, मन शांत हो गया है, मन शांत हो गया है... अंधकार ही अंधकार है... चारों ओर अंधकार है... मैं हूं और अंधकार है... कुछ भी नहीं सूझता, कोई और दिखाई नहीं पड़ता, अंधकार है, अंधकार है... मन शांत हो गया है, मन बिल्कुल शांत हो गया है...
अब धीरे-धीरे आंखें खोलें... बाहर भी बहुत शांति मालूम पड़ेगी... धीरे- धीरे आंखें खोलें... फिर दूसरा प्रयोग समझें, और उसे पांच मिनट के लिए करें। समाधि की पहली सीढ़ी है अंधकार का बोध। धीरे-धीरे आंख खोलें... बाहर भी बहुत शांति मालूम पड़ेगी...
अब दूसरा चरण समझ लें। फिर पांच मिनट उसे हम करेंगे। जब कोई मरता है
तो गहन अंधकार में चारों ओर से घिर जाता है। मृत्यु के पहले चरण पर अंधकार घेर लेता है। वह सारा जगत जो दिखाई पड़ता था, खो जाता है। वे सब प्रियजन, मित्र, अपने, पराये, वे जो चारों तरफ थे, सब खो जाते हैं और एक अंधकार का पर्दा चारों तरफ से घेर लेता है। लेकिन हम अंधकार से इतना डरते हैं कि उस

डर के कारण बेहोश हो जाते हैं। काश हम अंधकार को भी प्रेम कर पाएं, तो फिर मृत्यु में बेहोश होने की जरूरत न रह जाए। और समाधि में जिन्हें जाना है उन्हें अंधकार को प्रेम करना सीखना पड़े, अंधकार को आलिंगन करना सीखना पड़े, अंधकार में डूबने की तैयारी दिखानी पड़े।
इसलिए पहले चरण में पांच मिनट अंधकार को अपने चारों ओर घिरा हमने देखा। अब दूसरी बात समझ लेनी चाहिए। मृत्यु का या समाधि का दूसरा चरण हैः एकाकीपन का बोध, मैं अकेला हूं। मृत्यु के दूसरे चरण में अंधकार के घिरते ही पता चलता है कि मैं अकेला हूं। कोई भी मेरा नहीं, कोई भी संगी नहीं, कोई भी साथी नहीं। लेकिन जीवन भर हम इसी ढंग से जीते हैं कि लगता है--सब हैं मेरे--मित्र हैं, प्रियजन हैं, अपने हैं। अकेला हूं, इसका कभी ख्याल भी नहीं आता। अगर ख्याल आए भी तो जल्दी किसी को अपना बनाने निकल पड़ता हूं, ताकि अकेलेपन का ख्याल न आए। बहुत कम लोग, बहुत कम क्षणों पर, अकेले होने का अनुभव कर पाते हैं। और जो मनुष्य अकेले होने का अनुभव नहीं कर पाता, वह अपना अनुभव भी नहीं कर पाएगा। जो व्यक्ति निरंतर ऐसा ही सोचता है कि दूसरों से जुड़ा हूं, दूसरों से जुड़ा हूं--दूसरे हैं, संगी हैं, साथी हैं-- उसकी नजर कभी अपने पर नहीं जा पाती है।
मृत्यु का भी दूसरा अनुभव जो है वह अकेले का अनुभव है। इसलिए मृत्यु हमें बहुत डराती है। क्योंकि जिंदगी भर हम अकेले न थे, और मृत्यु अकेला कर देगी। असल में मृत्यु का डर नहीं है, डर है अकेले होने का।
अभी भी अकेले होकर हम डरते हैं। कोई साथ हो तो डर नहीं है। और मजा यह
है कि दो आदमी साथ हैं, वे दोनों अकेले में डरते हैं, दोनों मिल जाएंगे तो डर दुगुना होगा कि आधा होगा? दो आदमी, दोनों अकेले में डरते हैं, लेकिन दोनों मिल कर सोचते हैं कि दूसरा है, डर नहीं है। दूसरा भी सोचता हैः दूसरा है, डर नहीं है।
डर सिर्फ दुगुना हो गया है। लेकिन एक-दूसरे के साथ हम सोच लेते हैं। आदमी अंधेरी गली में से निकलता है तो डरता है, तो जोर से गीत गाने लगता है, भगवान का नाम लेने लगता है। अपनी ही आवाज सुन कर भी ऐसा लगता है कोई है। अकेले का भय है।
लेकिन जो अकेले होने को राजी नहीं, टोटली अलोन, वह समाधि में नहीं जा सकता। क्योंकि समाधि में कौन साथ देगा? पत्नी कैसे समाधि में साथ देगी? बेटा कैसे साथ जाएगा? पति कैसे साथ जाएगा? गुरु कैसे साथ जाएगा? दोस्त कैसे साथ जाएगा? समाधि में तो कोई भी नहीं जाएगा। समाधि में तो बिल्कुल अकेले जाना होगा।
इसलिए जो जितना एक्सट्रोवर्ट है, जो अपने से बाहर के लोगों से जितना जोड़े रखता है अपने को, कभी अकेला नहीं होता, वह आदमी समाधि में पहुंचने में उतनी ही मुश्किल अनुभव करता है। अगर कभी हम अकेले छूट भी जाएं सौभाग्य से, तो जल्दी से अपने को भर लेते हैं। रेडियो खोल लेंगे, अखबार पढ़ने लगेंगे-- कुछ न कुछ करने लगेंगे--सिगरेट पीने लगेंगे। ये सिर्फ अकेलेपन से बचने के उपाय हैं। यहां तक कि लोग अकेले हैं, बैठ कर ताश खेलने लगेंगे, अकेला ही आदमी दोनों तरफ से बाजियां चलने लगेगा, दूसरे को कल्पित कर लेगा कि कोई है।
अकेले होने से हम इतने भयभीत हैं, तो फिर हम समाधि में प्रवेश नहीं कर सकते हैं। और अकेले होने का सौंदर्य अदभुत है। मेरा मतलब यह नहीं है कि कोई समाज से भाग जाए। समाज से जो लोग भाग जाते हैं, वे भी अकेले नहीं हैं। क्योंकि जिसे वे छोड़ कर भागते हैं, वह उनके मन में साथ चला जाता है। वे जंगल-पहाड़ पर बैठ कर आपकी ही याद कर रहे हैं। क्योंकि अगर आपको वे भूल सकते तो यहीं भूल सकते थे, जंगल-पहाड़ जाने की कोई भी जरूरत न थी।
अकेले होने का मतलब भाग जाना नहीं है। अकेले होने का मतलब इस सत्य को जानना कि मैं अकेला हूं, अकेला आता हूं, अकेला हूं, अकेला जाऊंगा। साथी हैं, संगी हैं--रास्ते पर राहगीर की तरह मिले हुए मित्र हैं, साथ थोड़ी देर हम हैं, और विदा हो जाएंगे। साथ होना बुरा नहीं है। लेकिन इतना साथ हो जाना कि अपने होने का बोध ही मिट जाए, महंगा है। साथ जरूर हों--पत्नी हों, पति हों, बेटे हों, मित्र हों, समाज हो--यह सवाल नहीं है; लेकिन सबके बीच निरंतर अपने को अकेला जाना जा सके, पहचाना जा सके, तो फिर भीड़ में भी अकेले हो सकते

हैं। और अगर अकेले होने की कला मालूम न हो, तो जंगल में भी अकेले नहीं हो सकते हैं, वहां भी भीड़ मौजूद रहेगी।
तो दूसरा प्रयोग है अकेले होने का। जैसा अभी हमने अंधकार का भाव किया। तो पहले हम अंधकार का भाव करेंगे एक मिनट। जब अंधकार घिर जाएगा, तब हम दूसरा भाव करेंगे कि मैं बिल्कुल अकेला हूं, अकेला हूं, एकदम अकेला हूं। कोई भी साथी नहीं, कोई संगी नहीं, कोई मित्र नहीं, कोई है ही नहीं, मैं बिल्कुल अकेला हूं। यह अकेले होने का भाव जितना गहरा होगा उतना मैं अपने निकट आऊंगा। जब तक मैं दूसरे को खोज रहा हूं तब तक अपने से दूर जा रहा हूं। तो समाधि का दूसरा चरण, मृत्यु का भी दूसरा चरण है--अकेलेपन का बोध।
अब हम आंख बंद करें, दूसरे प्रयोग के लिए शरीर को ढीला छोड़ कर बैठें। आंख बंद कर लें, शरीर को ढीला छोड़ दें... आंख बंद हो गई, शरीर ढीला छोड़ दिया... घने अंधकार को चारों तरफ घिरा हुआ अनुभव करें... अंधकार है, अंधकार है, चारों तरफ अंधकार है... कोई दिखाई नहीं पड़ता, कुछ सूझता नहीं, बस अंधकार ही अंधकार है... छोड़ दें अंधकार में अपने को...
अंधकार ही अंधकार है और मैं अकेला हूं। दूसरा भाव करेंः मैं अकेला हूं। प्राण के कोने-कोने में यह खबर पहुंच जाएः मैं अकेला हूं। श्वास-श्वास तक यह खबर पहुंच जाएः मैं अकेला हूं। मन के कण-कण तक यह खबर पहुंच जाएः मैं अकेला हूं। मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं, मैं बिल्कुल अकेला हूं... अकेला आता हूं, अकेला जाता हूं, मैं अकेला हूं... पांच मिनट के लिए इस भाव में गहरे से गहरे उतर जाएंः मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं, मैं बिल्कुल अकेला हूं... कोई भी तो नहीं, मैं बिल्कुल अकेला हूं, मैं अकेला हूं... कोई भी तो नहीं; संगी, साथी, प्रियजन, कोई भी तो नहीं... मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं, मैं बिल्कुल अकेला हूं...
पांच मिनट के लिए एक ही भाव में डूब जाएंः मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं... और विराट शांति उतर आएगी... मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं... चारों तरफ घनघोर अंधकार है, और मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं...
जैसे ही बिल्कुल अकेले रह जाएंगे, सब शांत हो जाएगा, ऐसा शांत जैसा कभी नहीं हुआ... मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं, मैं बिल्कुल अकेला हूं, चारों तरफ अंधकार और मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं, चारों तरफ अंधकार और मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं... मन शांत हो जाएगा, मन बिल्कुल शांत हो जाएगा... मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं... कोई नहीं, कोई नहीं, बस अंधकार है और मैं अकेला हूं... मैं अकेला हूं, चारों ओर अंधकार, अंधकार, अंधकार और मैं अकेला हूं, मैं बिल्कुल अकेला हूं... अकेला हूं, अकेला हूं, अकेला हूं, चारों ओर अंधकार और मैं अकेला हूं... मन बिल्कुल शांत हो जाएगा। सब अशांति दूसरे के साथ है, सब अशांति दूसरे के साथ है। मैं अकेला हूं तो कैसी अशांति! मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं... सब शांत हो जाएगा... अकेला हूं, अकेला हूं, अकेला हूं, अंधकार है, अंधकार है, और मैं अकेला हूं... मन शांत हो गया है...
समाधि की दूसरी सीढ़ी है--अकेले होने का भाव। इस भाव को ठीक से पहचान लें। मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं, मैं अकेला हूं। फिर धीरे-धीरे आंख खोलें, चारों तरफ लोग दिखाई पड़ेंगे, फिर भी लगेगा मैं अकेला हूं। लोग हैं चारों तरफ, लेकिन मैं अकेला हूं। धीरे-धीरे आंख खोलें, चारों तरफ बड़ा संसार है, लेकिन मैं अकेला हूं।
फिर तीसरा प्रयोग समझें और पांच मिनट के लिए तीसरे प्रयोग को करें। अंधकार मृत्यु का पहला अनुभव है। अकेले होने का, निपट अकेले होने का अनुभव मृत्यु का दूसरा अनुभव है। और तीसरा अनुभव है उस आदमी के मिट जाने का जिसे मैंने अब तक जाना था कि मैं हूं, जिसे मैंने समझा था कि मैं हूं। नाम था जिसका, मकान था जिसका, इज्जत थी, पता-ठिकाना था जिसका, मृत्यु का तीसरा अनुभव है उस आदमी का मिट जाना जिसे मैंने जाना था कि मैं हूं। जरूर, जिसे हम जानते हैं मैं हूं, उसके पीछे भी कोई है जो कभी नहीं मिटता। लेकिन उसे हम नहीं जान पाएंगे, नहीं पहचान पाएंगे, जब तक यह पर्त न मिट जाए जिसे हम जानते हैं अपना होना।

इसलिए तीसरा प्रयोग है इस बात के अनुभव का कि मिट गया मैं--वह जो था, जिसे मैं जानता था; जिसका चेहरा था, शक्ल थी, पहचान थी, नाम था, ठिकाना था-- मिट गया, मिट गया। मैं मिट गया हूं, क्योंकि मैं अपने को जैसा जानता हूं वह मृत्यु में मिट जाएगा। समाधि में इस तीसरे अनुभव को तीव्रता से उतारना है कि मैं मिट गया हूं, मैं मर गया हूं, मैं मर गया हूं। तीसरा अनुभव मिटने का अनुभव है। जब अंधकार पूरा हो जाएगा और मैं बिल्कुल अकेला रह जाऊंगा, तब मिटना बहुत आसान होगा। और जब मैं मिट भी जाऊंगा, तब जो शेष रह जाएगा, वही है, दि रिमेनिंग, वह जो पीछे बच जाता है। जिसे अंधकार डुबा नहीं पाता, जिसके अकेले होने से कुछ टूटता नहीं, और जिसके मर जाने से भी कुछ मिटता नहीं, फिर जो पीछे रह जाता है वह है। तीसरा प्रयोग है मिटने का। और जब आप मिट जाएं, मिट गए हों, तो आप कुछ भी नहीं कर सकते हैं, आपके करने को कुछ बाकी नहीं रह जाता है। फिर आप रह जाते हैं। जो रह जाएगा, रह जाएगा; जो खो जाएगा वह खो जाएगा। तो इस तीसरे प्रयोग को सर्वाधिक केंद्र पर समझना चाहिए समाधि के, मिट जाने का।
एक फकीर लोगों को समाधि के संबंध में समझाता था। लेकिन वह कहता था, जो थोड़ा जानता हो वही मेरे पास आए। एक युवक उसके पास गया है। उस युवक ने कहा, मुझे सीखनी है समाधि। उसने कहा, कुछ थोड़ा जानते हो तो आओ। लेकिन वह युवक कुछ भी न जानता था। तो उस फकीर ने उसे द्वार के बाहर करके द्वार बंद कर लिए। उस युवक ने सोचा कि मैं कैसे बताऊं कि मैं कुछ जानता हूं! मैं कुछ जानता नहीं। उसने पास-पड़ोस में जाकर लोगों से पूछा कि क्या कहने से फकीर मुझे स्वीकार कर लेगा?
तो उन लोगों ने कहा कि जहां तक हमें पता है, फकीर सिखाता है कि समाधि यानी मर जाना। तो तुम जाकर, जब फकीर कहे, कुछ जानते हो? तो गिर पड़ना और मर जाना।
तो उसने कहा, ऐसे कैसे मरूंगा? गिर पड़ सकता हूं, लेकिन मरूंगा कैसे?
तो उन्होंने कहा, तुम तो आंख बंद करके पड़ जाना। तो फकीर समझेगा कि थोड़ा तो जानते हो।
वह युवक गया। सीख कर आया था। सीखा हुआ सदा झूठा होता है। दूसरे से सीखा हुआ कैसे काम पड़े? जैसे ही उस गुरु ने पूछा, कुछ जानते हो? वह तत्काल गिरा और मर गया। मर गया यानी आंख बंद करके, हाथ-पैर ढीले छोड़ कर पड़ा रह गया। गुरु ने कहा, बिल्कुल ठीक! बिल्कुल ठीक! लेकिन कम से कम एक आंख तो खोलो!
तो उस युवक ने सोचाः शायद यह जरूरी होगा समाधि में एक आंख खोलना। पर
एक आंख खुलती नहीं, एक खोली तो दोनों आंखें खुल गईं।
उस गुरु ने कहा, उठो और बाहर निकल जाओ! किससे सीख कर आए हो? कहीं मुर्दा आदमी आंख खोलता है! अगर मर ही गए थे तो मर ही जाना था। आंख क्यों खोली? मरा हुआ आदमी कुछ भी नहीं करता है!
तीसरा जो प्रयोग है कि मर ही गए, तो उसका मतलब है कि फिर पांच मिनट आपको कुछ नहीं करना है। अगर शरीर गिरे तो गिर जाए, झुके तो झुक जाए, जो हो हो। अगर बाहर कोई आवाज आ रही है, सड़क से कार निकल रही है, सुनाई पड़ रही है, सुनते रहें। मरा हुआ आदमी कुछ नहीं कर सकता, यह भी तो नहीं कह सकता कि यह कार आवाज नहीं करनी चाहिए। कर रही है, मरा हुआ आदमी क्या करेगा? मरा हुआ आदमी पड़ा हुआ रहेगा। जो सुनाई पड़ रहा है, सुनाई पड़ेगा; नहीं सुनाई पड़ रहा है, नहीं सुनाई पड़ रहा है। चीजें जैसी हैं वैसी ही स्वीकार कर लेगा। मरा हुआ आदमी कुछ भी तो नहीं कर सकता।
एक और फकीर के संबंध में मैंने सुना है कि वह फकीर सदा दूसरों से पूछा करता था। उसने एक दिन गांव में एक ज्ञानी आया और उससे पूछा कि किसी दिन मैं मर जाऊं तो मुझे कैसे पता चलेगा कि मैं मर गया? तो मुझे कोई तरकीब बता दें जिससे मैं जांच कर लूं कि मैं मर तो नहीं गया हूं! तो उस ज्ञानी ने कहा, यह भी कोई जांच करने की बात है, जब मरोगे तो हाथ-पैर बिल्कुल ठंडे हो जाएंगे। ठंड के दिन थे, बर्फ पड़ रही थी। वह फकीर जंगल में घास काटने गया था, कुछ लकड़ी काटने गया था। हाथ ठंडे हो गए। उसने हाथ छुआ, उसने देखा, मालूम होता है मौत आ रही है। उसने कुल्हाड़ी नीचे पटक दी और एक वृक्ष के नीचे लेट गया, क्योंकि मरे हुए आदमी को लेट जाना चाहिए। नियमानुसार वह लेट गया। हाथ ठंडे होते गए, लेट जाने से और जल्दी ठंडा हो गया, कुल्हाड़ी चलाता था तो

थोड़ी गर्मी भी थी। जब बिल्कुल ठंडा हो गया तो उसने कहा कि अब तो मर ही गए।
पड़ोस से कुछ लोग निकलते थे रास्ते से, उन्होंने देखा, बेचारा कोई मर गया।
तो वे उसकी अरथी बना कर, परदेशी लोग थे, मरघट ले जाने लगे।
अब उस फकीर ने कहा, हम क्या करें! जब मर ही गए हैं, तो मरघट तो ले जाए ही जाएंगे। तो वह कुछ भी न बोला। वह अरथी पर सवार हो गया। अरथी चली। लेकिन अजनबी लोग थे, परदेशी लोग थे, उन्हें पता न था मरघट का रास्ता कौन सा है। चौरस्ते पर आकर वे सोचने लगे, कोई यात्री निकले तो हम पूछ लें मरघट का रास्ता कौन सा है। फकीर को तो पता था कि रास्ता कौन सा है, लेकिन उसने कहा कि पता नहीं मुर्दे बताते हैं या नहीं बताते। मगर यह वह ज्ञानी से पूछना भूल गया था कि मुर्दे, अगर कोई ऐसा अवसर आ जाए, तो कुछ बता सकते हैं कि नहीं। लेकिन बड़ी देर हो गई, कोई नहीं आया, तो वे चारों बड़े परेशान हो गए जो उठा कर ले गए थे। उन्होंने कहा, बड़ी देर हुई जाती है। तो फिर इसको अपन यहीं छोड़ दें और अपन अपने रास्ते पर जाएं, कोई दूसरा पहुंचा देगा। फकीर ने कहा, घबड़ाओ मत! रास्ता मुझे मालूम है। जब मैं जिंदा हुआ करता था, तो बाएं तरफ के रास्ते से लोग मरघट जाते थे। जब मैं जिंदा हुआ करता था, तब बाएं तरफ के रास्ते से लोग मरघट जाते थे।
तब तो वे चारों घबड़ा कर भाग खड़े हुए--कि यह क्या हो गया है!
उस फकीर ने कहा, तुम बिल्कुल पक्का मानो, मैं मरा हुआ आदमी हूं। सिर्फ
यह ज्ञानी से पूछना भूल गया कि मरा हुआ आदमी कुछ बता सकता है कि नहीं बता सकता है। इतनी भर भूल है।
मरे हुए होने का पांच मिनट जो हम अनुभव करेंगे, उसमें कुछ भी नहीं करना है, जो हो जाए उसे होने देना है। रास्ता भी नहीं बताना है। रास्ते से कोई गुजरता हुआ हो हार्न, तो यह भी नहीं सोचना है कि लोग शोर क्यों कर रहे हैं। कोई आपके ऊपर गिर भी जाए, तो भी नहीं सोचना है कि यह क्यों गिर गया। मुर्दे को स्वीकार कर लेना चाहिए--जो हो रहा है, हो रहा है। पांच मिनट के लिए मुर्दा होने का प्रयोग करें। फिर हम ध्यान के लिए बैठेंगे।
शरीर को ढीला छोड़ें और आंख बंद कर लें। शरीर को ढीला छोड़ दें, आंख बंद
कर लें। आंख बंद कर लें, शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ दें। अभी छोड़ सकते हैं, अभी मर नहीं गए। मर गए, फिर कुछ भी न कर सकेंगे। बिल्कुल ढीला छोड़ दें। शरीर ढीला छोड़ दिया है, आंख बंद कर ली है। एक मिनट के लिए अंधकार को लौटा लें। चारों ओर अंधकार ही अंधकार है... चारों ओर अंधकार ही अंधकार है... अंधकार ही अंधकार है...
फिर दूसरा भाव कर लेंः मैं अकेला हूं, कोई संगी-साथी नहीं, मैं बिल्कुल अकेला हूं... मैं अकेला हूं, मैं बिल्कुल अकेला हूं...
और तीसरा अनुभव करेंः मैं मर रहा हूं, मैं खो रहा हूं, मैं मिट रहा हूं, मैं मिटा जा रहा हूं, मैं मर रहा हूं, मैं समाप्त हो रहा हूं, मैं मर रहा हूं, मैं मिट रहा हूं, मैं समाप्त हो रहा हूं... पांच मिनट के लिए मैं मर रहा हूं, मैं मिट रहा हूं, मैं समाप्त हो रहा हूं...
मिट जाएं, बिल्कुल मिट जाएं, जैसे हैं ही नहीं... मर जाएं, जैसे बचे ही नहीं। फिर जो बचेगा, बच रहेगा। वह आप नहीं हैं, वह जो बचा है वह परमात्मा है। वह जो बचेगा वह आप नहीं हैं, वह जो बचा है वह आत्मा है। मिट जाएं, बिल्कुल मर जाएं... मैं हूं ही नहीं... मैं मर गया हूं, मैं मर गया हूं, मैं मर गया हूं... बिल्कुल मिट जाएं, शरीर गिरे, गिर जाए... शरीर आगे झुके, झुक जाए... अब मरा हुआ आदमी कुछ भी नहीं कर सकता, जो हो रहा, हो रहा है... मैं मर गया हूं, मैं मर गया हूं, मैं बिल्कुल मिट गया हूं... मर ही जाएं, मिट ही जाएं, कुछ भी नहीं बचा, पांच मिनट के लिए खो जाएं, समाप्त हो जाएं...
मैं मर गया हूं, मैं मर गया हूं... मैं हूं ही नहीं, मैं मिट गया हूं, मैं समाप्त हो गया हूं... मैं मर गया हूं, मैं मिट गया हूं, मैं समाप्त हो गया हूं... मैं मिट गया हूं, मैं मर गया हूं, मैं हूं ही नहीं... छोड़ दें, बिल्कुल मिट जाएं, अपने को छोड़ दें... हूं ही नहीं, मिट गया हूं, समाप्त हो गया हूं... और एक अपूर्व शांति प्राणों पर छा जाएगी, एक अलौकिक शांति मन पर छा जाएगी...
मैं मर गया हूं, मैं मिट गया हूं, अब कुछ भी नहीं कर सकता हूं, हूं ही नहीं... छोड़ दें, छोड़ दें, बिल्कुल मिट जाएं... मैं मर गया हूं, मैं मिट गया

हूं, मैं हूं ही नहीं, मैं हूं ही नहीं... जो है वह है, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं... जो है वह है, मैं नहीं हूं, मैं मिट गया हूं...
और देखें कैसी शांति, कैसी शांति सब तरफ से उतर आती है... मैं मर गया हूं, मैं मिट गया हूं, मैं हूं ही नहीं, मैं बिल्कुल मिट गया हूं... मैं मिट गया हूं, मैं मिट गया हूं, मैं हूं ही नहीं, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं बिल्कुल नहीं हूं...
मन शांत हो गया है, मन बिल्कुल शांत हो गया है... मैं मिट गया हूं, मैं
मर गया हूं, मैं हूं ही नहीं... मैं बिल्कुल मिट गया हूं, मैं मर गया हूं... इस भाव को ठीक से पहचान लें, यह समाधि का केंद्र है, इस भाव को ठीक से पहचान लें... मैं मिट गया हूं, मैं समाप्त हो गया हूं, मैं हूं ही नहीं... और मन बिल्कुल शांत हो गया...
अब धीरे-धीरे आंखें खोलें... भीतर सब कुछ मिट गया है, धीरे-धीरे आंखें खोलें... अब जो आंखों से देख रहा है, वह मैं नहीं हूं।
ये तीन सूत्र हैं समाधि के लिए।
पहलाः अंधकार। दूसराः अकेला होना। तीसराः समाप्त हो जाना।
अब हम अंतिम दस मिनट के लिए इन तीनों प्रयोगों को एक साथ, ये तीन मैंने समझाने के लिए अलग-अलग आपको प्रयोग कराए कि आपके ख्याल में आ जाएं, अब इन तीनों का सम्मिलित प्रयोग दस मिनट के लिए हम करेंगे। उस समय बिल्कुल ही अपने को छोड़ देना है, जैसे खो ही गए, बचे ही नहीं। आवाज आती रहेगी, बाहर मशीन चलती है, कोई सड़क से गुजरेगा, कहीं कोई पक्षी आवाज करेगा, उसे चुपचाप सुनते रहना है। जो हो रहा है, हो रहा है, और हम समाप्त हो गए हैं।
अब अंतिम प्रयोग के लिए बैठें। आंख बंद कर लें और शरीर को ढीला छोड़ दें। आंख बंद कर लें और शरीर को ढीला छोड़ दें। चारों ओर अंधकार है, चारों ओर अंधकार है, मैं बिल्कुल अकेला हूं, कोई संगी नहीं, साथी नहीं। ढीला छोड़ दें बिल्कुल, मिटने की तैयारी करनी है, बिल्कुल ढीला छोड़ दें। अनुभव करेंः शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर बिल्कुल शिथिल होता जा रहा है। अंधकार है घना, चारों ओर अंधकार ही अंधकार है, मैं बिल्कुल अकेला हूं, कोई संगी नहीं, साथी नहीं। और मर रहा हूं, मिट रहा हूं, समाप्त हुआ जा रहा हूं। जैसे कोई बूंद किसी सागर में मिट जाती है। उस मिटने के लिए तैयार हो जाएं।
शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ दें, अनुभव करेंः शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है... बिल्कुल ढीला छोड़ते जाएं, मिटना ही है, बिल्कुल ढीला छोड़ दें, शरीर शिथिल हो रहा है... गिरे, गिर जाए; झुके, झुक जाए; जो हो, हो... शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है... चारों ओर अंधकार ही अंधकार है, मैं बिल्कुल अकेला हूं, एकदम अकेला हूं... शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है... श्वास शांत होती जा रही है... श्वास शांत होती जा रही है। मन शांत होता जा रहा है, मन शांत होता जा रहा है...
अब दस मिनट के लिए बिल्कुल मिट जाएं, जैसे हैं ही नहीं। मैं मर गया हूं, मैं नहीं हूं, मैं मर गया हूं, मैं नहीं हूं। आवाज सुनाई पड़ती रहेगी, सुनते रहें। मरा हुआ आदमी कुछ भी नहीं कर सकता। जो हो रहा है उसे जान लेता है, स्वीकार कर लेता है। दस मिनट के लिए बिल्कुल मिट जाएं। और इस मिटने से एक बिल्कुल नई शांति, नया आनंद, और एक नया अनुभव जन्मेगा। मिट जाएं, मैं मर रहा हूं, मैं मर रहा हूं, मैं बिल्कुल मिट गया हूं...
अंधकार ही अंधकार है... अंधकार ही अंधकार है... और मैं बिल्कुल मिट गया हूं, मैं हूं ही नहीं... सब शांत हो जाएगा, भीतर एक अनूठा आनंद उठने लगेगा... मैं मर गया हूं, मैं मर गया हूं, मैं बिल्कुल मिट गया हूं...
छोड़ दें... छोड़ दें... बिल्कुल छोड़ दें... मैं मिट गया हूं, मैं मिट गया हूं, मैं बिल्कुल मिट गया हूं... मैं हूं ही नहीं, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं... मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं... मैं हूं ही नहीं, मैं हूं ही नहीं, मैं हूं ही नहीं... सब शांत हो गया है, और एक गहरे आनंद की लहर भीतर उठने लगेगी, सब शांत हो गया है... मैं नहीं हूं...

समाधि के द्वार पर
पांचवां प्रवचन

मन की मृत्यु ही समाधि है

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक मित्र ने पूछा है, पूछा हैः उपनिषद में कहा है कि परमात्म-तत्व उसी
को प्राप्त होता है जिसके गले में वह परमात्म-तत्व स्वयं ही माला डाल दे। इसका क्या अर्थ हुआ? इससे साधक की साधना निरुपयोगी नहीं हो गई?

यह सवाल बहुत महत्वपूर्ण है। इसे समझने में थोड़ी कठिनाई भी हो सकती है।
पहली बात तो यह कि साधक के बिना उपाय के वह नहीं मिलेगा और दूसरी बात तत्काल यह भी कि सिर्फ साधक के उपाय से उसे नहीं पाया जा सकता है। साधक के प्रयत्न से भी नहीं मिलता है वह और साधक न प्रयत्न करे तो भी नहीं मिलता है। साधक प्रयत्न करता है और प्रयत्न कर-कर के थक जाता है, हार जाता है, समाप्त हो जाता है, और यह अहंकार भी प्रयत्न करते-करते टूट जाता है कि मैं पा सकूंगा, जिस क्षण प्रयत्न इस जगह पहुंचता है कि प्रयत्न भी व्यर्थ दिखाई देने लगता है और साधक का यह अहंकार भी चला जाता है कि मैं पा सकूंगा, उसी क्षण वह उपलब्ध हो जाता है। प्रयत्न की असफलता पर उसकी प्राप्ति है। और इसीलिए जब किसी को मिलता है वह तब उसे ऐसा ही लगता है कि उसकी कृपा, उसके प्रसाद से मिला। क्योंकि मैं तो प्रयत्न कर-कर के हार गया और नहीं पा सका। लेकिन दूसरी बात भी गलत है, उसके प्रसाद से नहीं मिलता है। क्योंकि अगर उसकी कृपा से मिलता हो, तब तो इसका यह अर्थ हुआ कि उसके द्वार पर भी किसी के लिए कृपा है और किसी के लिए कृपा नहीं है। तब तो इसका यह अर्थ हुआ कि परमात्मा भी किसी के प्रति मोह रखता है और किसी के प्रति बड़ा विरक्त है। और किसी को दे देता है और किसी को नहीं देता है।
नहीं, उस द्वार पर ऐसा भेद संभव नहीं है। उसकी कृपा से मिलता है, इसका
यह अर्थ नहीं है कि उसकी कृपा से मिलता है। क्योंकि उसकी कृपा तो सभी को उपलब्ध है। उसकी कृपा में किसी के प्रति कोई भेद-भाव नहीं है। हो भी नहीं सकता। फिर जब कोई साधक यह कहता है कि उसकी कृपा से मिला, तो असल में वह यह कहता है कि जब मैं सब प्रयत्न कर चुका तब तो नहीं मिला। और अब मुझे मिला है जब मैं कोई प्रयत्न नहीं करता था। तो साधक क्या कहे? उसे ऐसा ही प्रतीत होता है कि उसकी ही कृपा से मिला। क्योंकि मेरे प्रयास से तो नहीं मिला। मेरी बात समझे आप? साधक की कठिनाई है। उसके प्रयास से नहीं मिला है, तो
वह कैसे कहे कि मेरे प्रयास से मिला है? और मिल तो गया है। अब वह क्या कहे? वह कहता है, उसकी कृपा से मिला।
लेकिन यह भी साधक की भ्रांति है। उसकी कृपा तो सबके लिए बराबर उपलब्ध है। लेकिन उसकी कृपा के लिए हमारे द्वार बंद हैं। और हमारे द्वार तब खुलते हैं जब हमारा अहंकार नहीं होता। कर्ता का अहंकार सबसे सूक्ष्म अहंकार है। और साधना का अहंकार अंतिम अहंकार है। धन का अहंकार छा.ेड़ देना बहुत आसान है, यश का अहंकार छोड़ देना भी बहुत कठिन नहीं; लेकिन तप का, तपश्चर्या का, त्याग का, अभ्यास का, साधना का, प्रार्थना का, धर्म का, योग का अहंकार छोड़ना सर्वाधिक कठिन है। क्योंकि उस अहंकार में बड़े गहरे में यह बात छिपी है कि मैं पा लूंगा। और मैं ही बाधा है।
एक छोटी सी घटना से समझाऊं।
बुद्ध ने छह वर्ष तक तपश्चर्या की। जो भी जिसने कहा, वही उन्होंने किया। किसी ने कहा उपवास, तो उन्होंने उपवास किए लंबे। और किसी ने कहा कि शीर्षासन, तो शीर्षासन किया। और किसी ने कहा नाम जपो, तो नाम जपा। और जिसने जो कहा, वे करते रहे। छह वर्ष निरंतर प्रयास करके भी कहीं पहुंचे नहीं, वहीं थे जहां से यात्रा शुरू की थी। निरंजना नदी में स्नान करने उतरे थे। देह दुर्बल हो गई थी। लंबे उपवास किए थे। नदी में तेज धार थी। नदी से

निकलने में इतनी भी शक्ति न थी कि बाहर निकल आएं। तो एक जड़ को पकड़ कर वृक्ष की किसी तरह रुके रहे।
उस जड़ को पकड़े समय उनके मन में ख्याल आयाः इतना निर्बल हो गया हूं कि नदी भी पार नहीं होती, तो उस जीवन की बड़ी नदी को कैसे पार कर पाऊंगा? और छह वर्ष हो गए, सब कर चुका जो कर सकता था, अब तो करने योग्य शक्ति भी नहीं बची है। अब क्या होगा? और सब कर लिया है निष्ठापूर्वक, लेकिन उसके कोई दर्शन नहीं हुए।
धन तो छोड़ आए थे, यश तो छोड़ आए थे, राज्य तो छोड़ आए थे, उस दिन निरंजना नदी के उस तट पर अंतिम अहंकार भी व्यर्थ हो गया कि मेरे प्रयास से पा लूंगा।
फिर वे किसी भांति निकले और पास के एक वृक्ष के नीचे विश्राम करने लगे। उस संध्या उन्होंने साधना भी छोड़ दी। कहना चाहिए--साधना भी छूट गई। सब छूट गया। यह भी छूट गया कि मैं पा लूंगा। छह साल की असफलता ने बता दिया-- यह भी नहीं हो सकता है। उस रात, उस संध्या बुद्ध के मन की कल्पना करना हमें बड़ी कठिन है। उस रात उनका मन कुछ भी करने की हालत में न रहा। धन की दौड़ नहीं थी, यश की दौड़ नहीं थी, आज सत्य की दौड़ भी नहीं थी। क्योंकि दौड़ कर पा लूंगा, यह बात ही समाप्त हो गई थी। उस रात वे परम निश्चिंत थे। कोई चिंता न थी। धर्म की चिंता भी न थी। परमात्मा को पाने का भी ख्याल न था। कोई ख्याल ही न था, कुछ पाने को न था, पैरों में कोई ताकत न थी। वे अत्यंत असहाय, हारे हुए, सर्वहारा, उस रात सो गए। वह पहली रात थी जिस रात वे पूरी तरह सोए। क्योंकि मन में अब कुछ करने को न बचा था, सब व्यर्थ हो गया था, करना मात्र व्यर्थ हो गया था और कर्ता मर गया था।
सुबह पांच बजे के करीब उनकी आंख खुली। आखिरी तारा डूब रहा था। उन्होंने आंख खोल कर उस आखिरी डूबते तारे को देखा। आज उनकी समझ के बाहर था कि क्या करूंगा! सुबह उठ कर क्या करूंगा! क्योंकि करना सभी समाप्त हो गया। धन की दौड़ पहले छूट चुकी; यश की दौड़ पहले छूट चुकी; रात धर्म की दौड़ भी छूट चुकी। अब मैं क्या करूंगा! वे एक शून्य में थे, जहां करना भी नहीं सूझ रहा था, एकदम खाली थे। और अचानक उन्हें लगा--जिसे मैं खोज रहा था, वह मिल गया है, वह भीतर से उभर आया है। उस शांत क्षण में, जब झील की सब लहरें ठहर गई थीं, आखिरी लहर जो धर्म के लिए मचलती थी, वह भी ठहर गई थी, उस क्षण में उन्होंने जाना कि जिसे मैं खोज रहा था वह तो मिल गया है।
जब लोग उनसे पूछते कि कैसे आपने पाया? तो वे कहते कि जब तक कैसे मैंने उपाय किया, तब तक तो पाया ही नहीं। जब मेरे सब उपाय खो गए, तब मैंने देखा कि जिसे मैं खोज रहा था वह तो मेरे भीतर मौजूद है।
असल में जिसे हम खोज रहे हैं वह भीतर मौजूद है और खोज में हम इतने व्यस्त हैं कि वह जो भीतर मौजूद है उसकी खबर ही नहीं आती। खोज भी खो जानी चाहिए, खोज भी मिट जानी चाहिए, तभी उसका पता चलेगा जो भीतर है। क्योंकि तब हम कहां जाएंगे?
खोज में चित्त कहीं चला जाता है। जब कहीं भी खोजेंगे नहीं, तो अपने पर
ही लौट आएंगे। फिर कोई रास्ता न रह जाएगा। उस क्षण में मिलेगा। तो उस क्षण में जब मिलेगा, तो कैसे कहें कि मैंने पा लिया!
उपनिषद ठीक ही कहते हैं--कि जब वही वरमाला पहना देता है, जब वही माला डाल देता है गले में, तभी मिलता है। लेकिन उपनिषद गलत भी कहते हैं। क्योंकि वह किसी के भी गले में माला न पहनाए, ऐसी बात ही नहीं है। वह तो माला लिए सबके ही गलों के सामने खड़ा है। जब तक हम गले को दूर रखते हैं, वह भी क्या करे? जब हम गला नीचे झुका लेते हैं, वह माला गिर जाती है। वह माला हम सबके गले के पास लिए परमात्मा खड़ा ही है। लेकिन गला झुकना भी तो चाहिए! झुकेगा कैसे? साधक का नहीं झुकता। साधक बड़ा अकड़ा रहता है। साधक बहुत अहंकार में जीता है। बड़े सात्विक, बड़े सुंदर, बड़े सूक्ष्म, पायस ईगोइस्ट होता है। साधक जो है वह पवित्र अहंकारी है। बाकी अहंकार पवित्र हो तो भी क्या फर्क पड़ता है, अहंकार अहंकार ही है। पवित्र जहर का क्या मतलब होता है? कोई मतलब नहीं होता। पवित्र जहर का मतलब हुआ कि और भी कनसनट्रेटेड, और भी शुद्ध। अपवित्र जहर का मतलब कुछ अडल्टरेशन भी है उसमें। पवित्र जहर का मतलब सिर्फ जहर ही जहर है। अब उसमें कुछ भी मिला हुआ नहीं है। पवित्र

अहंकार भी शुद्ध जहर है, जिसमें कुछ मिला हुआ नहीं है। पापी के अहंकार में और भी चीजें मिली होती हैं। पुण्यात्मा का अहंकार शुद्ध जहर होता है, उसमें कुछ भी मिला नहीं होता।
तो साधक नहीं पा सकता, क्योंकि अहंकार नहीं पा सकता। लेकिन साधक हुए बिना भी कोई नहीं पा सकता। इसलिए नहीं पा सकता साधक हुए बिना, क्योंकि साधक हुए बिना पता कैसे चलेगा कि साधक होना भी बेकार है।
कृष्णमूर्ति कहते हैं, भाग्यशाली हूं मैं कि मैंने शास्त्र नहीं पढ़े। मैं कहता हूं कि भाग्यशाली हूं मैं, क्योंकि मैंने शास्त्र पढ़े, और पढ़ कर जाना कि शास्त्रों से नहीं पाया जा सकता है।
लेकिन जिसने शास्त्र नहीं पढ़े उसके मन में कहीं न कहीं शक बना रह सकता है। शास्त्रों को पढ़ कर ही जाना जा सकता है कि नहीं मिलेगा यहां, नहीं मिलेगा यहां, नहीं मिल सकता है। साधना करके ही जाना जा सकता है--बेकार गई, बेकार गई; नहीं मिला, नहीं मिला। जो सब तरफ दौड़ चुकता है, सब खोज चुकता है, सब कोने-कोने खोज लेता है और थक कर बैठ जाता है कि नहीं मिला, नहीं मिला। नहीं मिलता है, आखिरी क्षण आ जाता है, हेल्पलेस, असहाय हो जाता है, बैठ जाता है, तब हैरान होकर पाता है कि आश्चर्य, जिसे मैं दौड़ कर खोजता था, वह बैठ कर मिल गया है।
असल में बैठे बिना वह नहीं मिलता है। और खोजने वाला बैठ नहीं पाता है,
वह दौड़ता रहता है, वह दौड़ता रहता है। बैठ जाए तो वह पाता है कि यह तो मेरे पास ही था।
इसलिए अगर किसी ने ऐसा कहा हो कि उसने माला डाल दी, उसकी कृपा से मिला,
तो उसका कुल मतलब इतना है कि मेरे प्रयास से नहीं मिला। लेकिन उसकी कृपा सब पर बराबर है। उसकी कृपा की वर्षा सबके ऊपर हो रही है। लेकिन जो खाली घड़े की तरह हैं वे भर जाएंगे; और जो भरे हुए हैं पहले से वे खाली रह जाएंगे; वर्षा होती रहेगी, उनमें नहीं भर पाएगा वह। ध्यान रहे, परमात्मा को दयावान और कृपालु कहना बहुत ही गलत है। क्योंकि दयावान सिर्फ हम उसे ही कह सकते हैं जो कभी-कभी अ-दया भी दिखाता हो। और कृपालु उसे कह सकते हैं जो कभी-कभी कृपा को छीन भी लेता हो, रोक भी लेता हो। नहीं, परमात्मा कृपालु नहीं है, परमात्मा कृपा-स्वरूप है। यानी अ-कृपा का वहां कोई उपाय नहीं है।
हम कहते हैं, परमात्मा सर्वशक्तिशाली है। लेकिन कुछ मामलों में बिल्कुल ही शक्तिशाली नहीं है। जैसे अ-कृपा करना चाहे तो बिल्कुल इंपोटेंट है, नहीं कर सकता है। दुष्टता करना चाहे तो नहीं कर सकता है। वहां जाकर बिल्कुल निर्वीर्य है, वहां कुछ भी नहीं कर सकता है।
स्वभाव है, वह चारों तरफ खड़ा है, हम कब गर्दन झुका देंगे--तभी।
सरमद के संबंध में मैंने सुना है। मुसलमानों की आयत है कि एक ही परमात्मा है। एक ही परमात्मा है, यह उनका खास ख्याल है। और दूसरा उसमें हिस्सा हैः उसके सिवाय कोई परमात्मा नहीं। एक ही परमात्मा है, उसके सिवाय दूसरा कोई परमात्मा नहीं। सरमद पहले हिस्से को छोड़ देता था और यही कहता रहता थाः दूसरा कोई परमात्मा नहीं, दूसरा कोई परमात्मा नहीं। तो मुसलमान मौलवी और पंडित दिक्कत में पड़ गए।
पंडित धार्मिक आदमी से सदा ही दिक्कत में पड़ जाता है। पंडित जो हैं वे अधर्म की दुकानों के मालिक हैं। वे सदा कठिनाई में पड़ जाते हैं। वे बासे शब्दों के संग्राहक हैं। और जब ताजा सत्य पैदा होता है तब वे मुश्किल में पड़ जाते हैं। क्योंकि उनका बासा सत्य एकदम बासा दिखाई पड़ने लगता है। सरमद यही कहता फिरताः नहीं है कोई परमात्मा। आधा हिस्सा छोड़ देता, पहला हिस्सा छोड़ देताः एक ही है परमात्मा, नहीं है उसके सिवाय कोई परमात्मा। वह पिछली ही बात कहता रहताः नहीं है कोई परमात्मा।
तो जाकर औरंगजेब को लोगों ने कहा कि यह तो बहुत अधर्म की बात हो रही है। और सरमद को लाखों लोग पूजते हैं। सरमद को बुलाया और उससे कहा कि क्या है तुम्हारा कहना? उसने कहा, नहीं है कोई परमात्मा। तो औरंगजेब ने कहा, यह तो नास्तिक की बात हुई। सरमद ने कहा, अभी तो मैं इतना ही जान पाया हूं कि नहीं है कोई परमात्मा। जब तक मैं जान न लूं कि है कोई परमात्मा, तब तक मैं कैसे कहूं? मैंने नहीं जाना, मैं नहीं कहूंगा। जान लूंगा, कहूंगा। जब तक

नहीं जाना, कैसे कहूं? और अगर झूठ कह दूं, तो परमात्मा पीछे मुझसे पूछेगा कि बिना जाने तूने कहा कैसे? तो मैं उसको जवाब क्या दूंगा?
औरंगजेब ने उसे सूली चढ़वा देने की आज्ञा दे दी कि यह आदमी मार डालने योग्य है। उसकी गर्दन काटी गई। और कहानी बड़ी अदभुत है, अगर सच न हो तो भी अदभुत है और अर्थपूर्ण है। जिस दिन उसकी गर्दन कटी, और दिल्ली की मस्जिद में जहां उसकी गर्दन कटी और उसका सिर गिरता हुआ सीढ़ियों पर लुढ़कने लगा, तो कहते हैं कि उसके सिर से आवाज निकली कि एक ही है परमात्मा, उसके सिवाय कोई परमात्मा नहीं। तो भीड़ थी लाखों लोगों की, उसने कहा, पागल थोड़ी देर पहले कह देता! अब गर्दन कट कर कहने से फायदा क्या! तो उस सरमद ने कहा, गर्दन कटे बिना पता कैसे चलता! गर्दन कटी तो पता चला, जब मैं मिटा तो पता चला कि नहीं, है, वही है, उसके सिवाय कोई भी नहीं। बाकी बिना गर्दन कटे पता नहीं चल सकता था। लोग कहने लगे, बड़ा पागल है, थोड़ी देर पहले कह देते तो बच जाते। सरमद ने कहा, बच जाते तो कभी कह ही न पाते। क्योंकि बच गए तो हम बच जाते, वह न हो पाता।
खोना पड़ेगा, अंततः इतना खो जाना पड़ेगा कि मेरे पास मेरा कहने जैसा भी कुछ न रह जाए। यह भी--मैं प्रयास कर रहा हूं, साधना कर रहा हूं, ध्यान कर रहा हूं, समाधि कर रहा हूं, योग कर रहा हूं--इसमें भी मैं मजबूत हो रहा है, यह भी कहने को न बच रह जाए। जिस दिन सब मेरा मैं कट जाता है... कटेगा कैसे? असफलता से कटता है। सब तरफ हार जाने से कटता है। सब तरफ प्रयास की व्यर्थता से कटता है। साधना का एक ही मूल्य है कि अंततः पता चलता है इससे भी नहीं मिलता वह। और जब कुछ भी द्वार-दरवाजा नहीं रह जाता, पाने का कोई मार्ग नहीं रह जाता, और अवाक खड़ा रह जाता है व्यक्ति और पाता है अब कुछ भी करने को शेष नहीं, तत्क्षण वह मिल जाता है। वह मिला ही हुआ है। करने वाले चित्त को दिखाई नहीं पड़ता, क्योंकि करने वाला चित्त भागता रहता है।
करने वाला चित्त ऐसा है जैसे कि एक फोटोग्राफर हो, और अपने कैमरे को लेकर मीलों की रफ्तार से दौड़ रहा हो, और जब बाद में अपने कैमरे को खोले तो कोई तस्वीर न बने, क्योंकि उसकी रफ्तार इतनी तेज थी कि जो भी उसके कैमरे से गुजरा, पकड़ा नहीं जा सका। लेकिन रुक जाए, तो तस्वीर बन जाए। रुका हुआ कैमरा तस्वीर पकड़ ले। भागता हुआ कैमरा कैसे पकड़े कुछ? भागता हुआ कैमरा खाली रह जाता, रुका कैमरा पकड़ लेता। इसलिए कैमरा हिल न जाए, इसकी भी फिकर रखनी पड़ती है। लेकिन हम पूरे तरफ भाग रहे हैं और हिल रहे हैं। तो वह जो मन का लेंस है, वह जो मन का कैमरा है, वह कुछ भी पकड़ नहीं पाता।
परमात्मा चारों तरफ मौजूद है। और हम अपने कैमरे को लेकर, अपने मन को लेकर भागे हुए हैं। दौड़ रहे हैं, दौड़ रहे हैं, चिल्ला रहे हैं, शोरगुल मचा रहे हैं, बैंडबाजा बजा रहे हैं, राम-धुन कर रहे हैं, भजन-कीर्तन कर रहे हैं, सब कर रहे हैं भागे हुए, लेकिन ठहर नहीं रहे हैं। ठहर जाएं, तो उसकी तस्वीर अभी पकड़ जाए।
लेकिन स्वभावतः, जब दौड़-दौड़ कर हम उसकी तस्वीर न पा सकेंगे, और जब हम
सब हार कर खड़े होकर उसकी तस्वीर पकड़ लेंगे, तो शायद फोटोग्राफर को भी लगेः उसकी ही कृपा थी तभी पकड़ पाए, हम तो बहुत दौड़े, न मिला वह। लेकिन अब जब खड़े हो गए तब तस्वीर बनी, इसका मतलब साफ हैः हमारे प्रयास से नहीं बनी, उसकी ही कृपा से बनी। हालांकि वह सदा कृपा लिए द्वार पर खड़ा था। लेकिन आप कभी मिलते ही न थे। आप कभी घर पर हैं ही नहीं। वह आए भी खोजने तो आप घर पर कभी होते नहीं, आप कहीं और ही होते हैं।
हम, यह जो, यह जो बात है उपनिषद में--सही भी, गलत भी। और यह भी आपसे कह दूं, धर्म के सभी सूत्र ऐसे हैं कि किसी अर्थ में सही भी और किसी अर्थ में गलत भी। और इसीलिए सब सूत्रों का खंडन भी किया जा सकता है और सब सूत्रों का समर्थन भी किया जा सकता है। असल में धर्म इतना रहस्यपूर्ण है कि उसमें सब विरोध समाहित हैं। तो ऐसा भी हम कह सकते हैं कि साधक को अपने ही प्रयास से मिलता है, कोई परमात्मा की कृपा नहीं है। क्योंकि अगर प्रयास के थक जाने पर भी मिलता है तो वह भी तो साधक के ही किए गए प्रयास का अंतिम फल है--थक जाना।
जैन हैं, बौद्ध हैं, वे ऐसा ही मानते हैं कि अपने ही प्रयास से मिलता है, चाहे थक कर ही मिलता हो, थकना भी तो अपना ही है। वे भी गलत नहीं कहते

हैं। उपनिषद हैं, जीसस के मानने वाले हैं, ईसाई हैं, मुसलमान हैं, वे सब मानते हैं--उसकी कृपा से मिलता है। वे भी गलत नहीं कहते हैं, क्योंकि जब हम थक जाते हैं तब मिलता है। हालांकि दोनों सही कहते हैं, दोनों गलत कहते हैं। क्योंकि बात ऐसी है कि वह दोनों तरह से हो सकती है।
इसलिए मैंने कहा कि इसे ठीक से समझ लेना जरूरी है। सार में अंतिम बात
इस संबंध में यह कह दूंः प्रयास जरूर करें, पूरी ताकत से करें, ताकि जल्दी थक जाएं और प्रयास व्यर्थ हो जाए। खूब दौड़ लें, ताकि थकान आ जाए और गिरना हो जाए। आधी दौड़ में मत रुक जाना किसी की बात सुन कर कि ठीक है, प्रयास से नहीं मिलेगा, वही माला डालेगा गले में, तो फिर हम काहे के लिए दौड़ें, रुक जाएं। लेकिन जो आधा दौड़ कर रुका है उसका मन दौड़ता ही रहेगा, वह रुक नहीं सकता है। पूरा दौड़ कर गिरना ही जरूरी है, थकना ही जरूरी है। चित्त से दौड़ का अर्थ ही खो जाना जरूरी है।
इसलिए मैं कहता हूं, शास्त्र पढ़ना, ताकि पता चल जाए कि शास्त्र व्यर्थ हैं। और साधना करना, ताकि पता चल जाए कि साधना बेकार है। खोजना, ताकि पता चल जाए कि खोजने से नहीं मिलता। जिस दिन यह सब हो जाएगा, उस दिन अचानक पाएंगे कि जिसे खोजने कहीं और गए थे, वह सदा से आपके द्वार पर बैठा प्रतीक्षा करता था। वह देखता था--कब तक लौट आओगे दौड़ कर, तो माला गले में डाल दें। माला सदा तैयार है, गला झुकने को तैयार नहीं। झुकता गला वही है जो कटने को तैयार हो जाए, मिटने को तैयार हो जाए, टूटने को तैयार हो जाए। इसलिए मैंने कहा, समाधि एक अर्थों में मृत्यु है। अपने मैं का मर जाना है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि जब समाधि में आप कहते हैं कि मैं अकेला हूं और ऐसा भाव करते हैं, तो बहुत असंख्य विचार आते हैं। लेकिन यदि साथ में ओम या राम-नाम का जप करने लगें, तो अकेलेपन की भावना प्राप्त करने में सहायता मिलती है। इस संबंध में आपके क्या ख्याल हैं?

अगर आपने अकेलेपन के भाव में राम-राम का जाप शुरू कर दिया, तो आप अकेले कैसे रहे? राम को बुला लिया सहायता में, अकेले न रहे, दो हो गए--आप और राम। ओम का जाप करने लगे, तो भी दो हो गए। दो में तो राहत मिल ही जाती है, हमारे मन की ही आदत दो की है। अभी थोड़ी देर पहले फिल्म का गाना गुनगुना रहे थे, तब भी दो थे, अब राम-राम, राम-राम कहने लगे, अब भी दो हैं। काम वही जारी है, सिर्फ शब्द बदल गए हैं। मन की आदत पुरानी ही जारी है। अभी सोच रहे थे किसी मित्र के संबंध में, किसी प्रियजन के संबंध में, अब उसके संबंध में न सोच कर, राम के रूप के संबंध में सोचने लगे, मन का काम जारी है। मन इसके लिए राजी हो जाएगा, वह कहेगा यह ठीक है। क्योंकि इससे कुछ बदलाहट न हुई, सिर्फ ऑब्जेक्ट बदला, सिर्फ विषय-वस्तु बदल गई, मन का काम पुराना ही जारी रहा। अब एक प्रेमी है, वह अपनी प्रेयसी के नख-शिख का विचार कर रहा है; और एक भक्त है, वह अपने भगवान के नख-शिख का विचार कर रहा है। दोनों में कोई भी फर्क नहीं, दोनों का मन एक ही काम कर रहा है। मन राजी है।
नहीं, जब मैं कह रहा हूं, अकेले का भाव, तो उसका मतलब यह है कि दूसरे के प्रवेश की जगह ही मत छोड़ना, तो ही मन मरेगा। मन दूसरे को चाहता है, मन द्वैत को चाहता है। मन द्वैत में ही जिंदा रहता है। अगर द्वैत गया तो मन गया।
तो मन कहता है, किसी तरह का द्वैत पैदा कर लो। भगवान और भक्त का कर लो, प्रेमी-प्रेयसी का कर लो, मां-बेटे का कर लो, मित्र-शत्रु का कर लो, द्वैत पैदा कर लो, बस तब मन राजी है। क्योंकि मन कहता है, द्वैत मेरा जीवन है। तो किसी तरह का द्वैत पैदा कर लो तो मन फिर गड़बड़ नहीं करता, वह कहता है, ठीक है, हम राजी हैं। लेकिन अगर द्वैत पैदा ही मत करो और कहो कि मैं अकेला ही हूं, कोई है ही नहीं दूसरा। न कोई राम, न कोई भगवान, कोई नहीं है, मैं अकेला हूं, निपट अकेला हूं। तब मन छटपटाने लगता है। तो वह जो अकेलेपन में छटपटाहट होती है तो मन फिर दौड़ कर कोई विचार पकड़ने की कोशिश करेगा। वह कहेगा कि अकेले कैसे हो सकते हैं, कुछ तो विचार करूं। कुछ तो सोचो, कोई चित्र लाओ, कोई स्मृति लाओ।
नहीं, मन की यह छटपटाहट इस बात की खबर है कि मन मरने से डर रहा है और अपने बचने का इंतजाम कर रहा है। उसे कोई सहारा चाहिए। वह द्वैत के बिना

नहीं जी सकता। आप तो जी सकते हैं द्वैत के बिना, आपका मन नहीं जी सकता। मन का अस्तित्व दो को चाहता है। दो के बिना मन को बिल्कुल राहत नहीं मिलती है। किसी भी तरह दो चाहिए। दो न हों तो मन मुश्किल में हो जाता है।
तो जब मैं कहता हूं, अकेले का भाव, टोटली अलोन, तो उसका मतलब यह हैः द्वैत की वृत्ति को जाने दें। मन कहे कि मुझे तो द्वैत चाहिए, तो उसे दें मत।
और फिर हमने अच्छे द्वैत खोज लिए हैं। हम कहते हैं, चलो ठीक है, फिल्म
का गीत मत गाओ, वह बुरी चीज है, तो राम-धुन करो। लेकिन वही एक बात है, कोई फर्क नहीं है, जरा भी फर्क नहीं है। राम-राम कहो कि कोका-कोला कहो, कोई फर्क नहीं है। वह जो मन है, वह कहता है, कुछ करते रहो, कुछ कहते रहो, चलेगा; जो भी कहो उससे चलेगा मन का काम, लेकिन रुको मत, दूसरे को पैदा कर लो। कुछ भी दूसरा मौजूद रहे, तो मन राजी है। और समाधि में जाना हो तो दूसरे को हटाना जरूरी है, ताकि मन मिट जाए। मन की मृत्यु का सूत्र हैः द्वैत से अपनी वृत्ति को हटा लेना; दूसरे से छुटकारा पा लेना। नहीं तो दूसरे के साथ रस कायम हो जाता है, कोई फर्क नहीं पड़ता है, कोई भेद नहीं पड़ता है।
इसलिए जब मैं कहता हूं, अकेलापन, तो उसका अर्थ हैः अद्वैत। उसका अर्थ हैः दूसरा नहीं है। किसी तरह के दूसरे का सहारा नहीं लेना है। दिक्कत होगी, कठिनाई होगी, होने दें। जब भी कोई चीज मरती है तो बड़ी कठिनाई होती है। मन पुराना है, जन्मों-जन्मों का है। शरीर तो बहुत नया है, शरीर तो हर बार बदल जाता है। मन बहुत पुराना है। लाखों, हजारों, करोड़ों वर्षों का है। मनुष्य-जाति की जितनी उम्र है उतना पुराना मन है। वह पुराना मन अपने बचने का पूरा इंतजाम करेगा। वह आखिरी उपाय करेगा। और मन के आखिरी उपाय बड़े होशियारी के हैं। अगर आप नहीं मानते, तो वह कहता है, अच्छा, तुम्हारी तरकीब से ही हम राजी हैं। तुम्हारी तरकीब से ही! तुम्हें राम-राम कहना है, राम-राम कहो। लेकिन कुछ कहो जरूर, कुछ बोलते रहो, दूसरे को बनाए रखो, तो हम भी बच जाएंगे। तो वह दूसरे को बना लेता है। मन दूसरे के बिना नहीं जी सकता। और दूसरे के बिना तत्काल मर जाता है।
मन की मृत्यु ही समाधि का द्वार है।
इसलिए मन को छटपटाने देना। कहना कि ठीक है, छटपटाओ, लेकिन मैं अकेला
ही हूं। और दूसरे का सहारा अब न लूंगा। दूसरा मेरी कल्पना का सहारा है। मन की सबसे बड़ी ताकत जो है वह यह है कि वह तत्काल, आप जिस तरह का सहारा चाहें, उसी तरह का सहारा दे देता है। आप रात सपना देखते हैं। अगर दिन भर भूखे रहे हैं, तो रात मन कहता है कि चलो, भोजन कर लो। सपना दिखा देता है भोजन का। कल्पित भोजन करा देता है। उससे बड़ा फायदा होता है मन को। नींद नहीं टूटती, नींद बनी रहती है। सपना जो है वह नींद को बचाने का उपाय है, सेफ्टी मेजर है। अगर सपना न हो तो आपका सोना मुश्किल हो जाए। क्योंकि दिन भर जो-जो आपने छोड़ा है, वह रात भर आपको परेशान करे। मन कहता है, चलो पैदा कर लो, कल्पना में ही पूरा कर लो।
आप अलार्म की घड़ी रख कर सोए हैं कि चार बजे रात उठना है। अलार्म की घड़ी
बज रही है और मन कह रहा है, मंदिर की घंटी बज रही है, अच्छा, पूजा शुरू हो गई। वह अलार्म को इनकार कर रहा है। वह कह रहा है, मंदिर की घंटी बज रही है, कहां का अलार्म! और आप मजे से सपने में हो गए। घंटी बज कर बंद हो गई। आप मजे से सो रहे हैं, क्योंकि मंदिर की घंटी से उठने का क्या संबंध! मन ने तरकीब ईजाद की। मन ने कहा, नींद मत तोड़ो, नींद को बचाओ। तो अलार्म की घंटी को उसने मंदिर के घड़ियाल में बदल दिया, मंदिर का घंटा हो गया।
मन पूरे समय ईजाद कर रहा है कि नींद न टूट जाए। रात सपना दे रहा है कि नींद न टूट जाए, दिन में कल्पनाएं दे रहा है कि नींद न टूट जाए। और जब आप कल्पनाएं तोड़ने जाते हैं, तो वह नई कल्पनाएं देता है। वह कहता है कि पति की कल्पना ठीक नहीं लगती, तो कृष्ण की कल्पना पति के रूप में करो, यह बड़ी अच्छी है। वह कहता है कि नहीं लगता अच्छा आदमी का साथ, कोई फिकर नहीं, मन में भगवान का साथ करो, उनके रूप, मूर्ति निर्माण करो, उनके साथ जीओ, यह बड़ा अच्छा है। लेकिन फर्क क्या है?

रात के सपनों जैसे ही मन दिन में भी सपने पैदा कर लेता है। सपने नींद
को बचाने के उपाय हैं। दो तरह की नींद है। एक तो जो हम रोज रात को सोते हैं वह नींद। और एक वह नींद जिसमें हम जन्म से ही सोए हुए हैं।
नींद अगर तोड़नी है तो मन के उपायों के प्रति जाग्रत होना पड़ेगा।
समझना पड़ेगा कि मन को भोजन नहीं देना है। मन द्वैत का भोजन मांगता है।
इसलिए मित्र ने ठीक ही पूछा है कि अगर ओम और राम का सहारा देते हैं तो थोड़ी राहत मिलती है। राहत मिल ही जाएगी। क्योंकि मन का काम पूरा हो गया।
नहीं, राहत देनी ही नहीं है। राहत न देंगे, मन तड़फेगा, तड़फेगा। तड़फने दें! वह पुकार करेगा कि मुझे चाहिए दूसरा, दूसरा लाओ, किसी भी रूप में लाओ। लेकिन आप कहें, मैं तो अकेला हूं, मैं दूसरा लाऊं भी तो कहां से लाऊं?
और ले भी आऊंगा तो भी मैं अकेला हूं। कितने दूसरों को ले आया! पत्नी को घर ले आया, अकेलापन मिटा? बच्चे पैदा कर लिए, अकेलापन मिटा? साथी-संगी बना लिए, अकेलापन मिटा? अकेला तो मैं हूं ही। अकेला होना मेरा स्वभाव है। कहां से लाऊं दूसरे को? नहीं लाऊंगा।
जब आप बहुत स्पष्ट रूप से तैयार हो जाएंगे कि अकेला होने की तैयारी है, मन थोड़ी देर चिल्लाएगा और चुप हो जाएगा। थोड़े दिन चिल्लाएगा और चुप हो जाएगा। जिस दिन मन चुप होगा, उस दिन जिसकी प्रतीति होगी, वह परमात्मा है। और जिसको आप राम-राम करके कह रहे थे, वह नहीं। वे तो सब आपके शब्द हैं, आपकी ईजादें हैं। जिस दिन अद्वैत होगा, उस दिन जिसे आप जानेंगे, वह है ओम! और जिसको आप चिल्ला रहे थे, वह कुछ भी नहीं, उसका मूल्य कोका-कोला से ज्यादा नहीं। लेकिन जिस दिन मन चला जाएगा और कुछ भी न बचेगा, और आप जानेंगे, आपकी आवाज नहीं होगी, आपका द्वैत नहीं होगा, आपके मन का इन्वेनशन, ईजाद नहीं होगी, मन होगा ही नहीं, जिस दिन आप उसे जानेंगे, वह कुछ और है। उसे कोई भी नाम दे दें--मोक्ष कहें, निर्वाण कहें, समाधि कहें, ओम कहें, ब्रह्म कहें-- जो कहना चाहें, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। उस जगत में सब शब्द समानार्थी हैं। वहां क्योंकि सभी शब्द एक से व्यर्थ हैं। वहां किसी शब्द की कोई गति नहीं है। इसलिए कोई भी अ ब स नाम दिया तो चल जाएगा, उससे कोई अंतर नहीं पड़ता है।
लेकिन आप मन के धोखे में मत पड़ जाएं। आप मन के द्वारा ईजाद न कर लें।
मन को राहत देने की कोशिश मत करें, मन को थोड़ा तड़फने दें, मन को थोड़ा परेशान होने दें। जब वह परेशान होगा, तड़फेगा, तभी मरता है। और मन की मृत्यु ही समाधि है।

एक और मित्र ने पूछा है कि समाधि में देवताओं का दर्शन होता है, ऐसा महान संतों के जीवन में सुना है, पढ़ा है। रामकृष्ण को होता है, मोहम्मद पैगंबर को होता है। काली माता और अन्य देवताओं के दर्शन होते हैं। ऐसे दर्शन के संबंध में क्या ख्याल है?

जैसा मैंने कहा, वे सब दर्शन मन के सपने हैं। इसलिए जब तक किसी का दर्शन होता रहे, तब तक समझना कि मन अभी मौजूद है, और अभी चक्कर के बाहर आप नहीं हो गए हैं। कोई भी दिखता हो! दर्शन से ही मुक्त हो जाना है, तभी उसका पता चलेगा जिसको दर्शन हो रहा है, जो द्रष्टा है।
सब भ्रम हैं। सुंदर भ्रम हैं। बड़े प्यारे सपने हैं। अब कृष्ण खड़े हों बांसुरी बजाते हुए, कैसा प्यारा सपना है! लेकिन ध्यान रहे, प्यारे सपने बुरे सपनों से भी बुरे होते हैं। क्योंकि बुरे सपने बुरे होने की वजह से जल्दी टूट जाते हैं। और प्यारे सपने प्यारे होने की वजह से मन होता ही नहीं कि टूटें, मन होता है कि बने रहें, बने रहें। रात देखा है, सुखद सपना आता है तो मन होता है देखते ही रहो। और कोई जगा दे बीच में तो दुश्मन मालूम पड़ता है। कि किसी तरह तो दिन भर का भिखमंगापन मिटा था, रात सम्राट हो गए थे, नाहक उठा दिया। घंटे भर और रह लेते सम्राट तो बुरा क्या था!
सुखद सपने को बचाने की प्रवृत्ति होती है। दुखद सपना तो जल्दी टूट सकता है, सुखद सपना जल्दी नहीं टूटता है। ये सब सुखद सपने हैं। और आदमी के मन की ताकत है--और एक ही ताकत है आदमी के मन की--कि वह सपने पैदा करता है। ड्रीम क्रिएटिंग फोर्स! मन का अर्थ हैः स्वप्न पैदा करने वाली शक्ति। वह

स्वप्न किसी भी तरह के पैदा कर सकता है। और अगर आप व्यवस्था से पैदा करें, तो आप कैसे भी स्वप्न पैदा कर सकते हैं। व्यवस्थाएं हमने खोज ली हैं।
अगर आपका पेट भरा है तो आपके स्वप्न पैदा करने की क्षमता कम हो जाती है। लेकिन अगर पेट खाली है तो क्षमता बढ़ जाती है। इसलिए जो लोग इस तरह के दर्शन वगैरह के चक्कर में पड़ना चाहते हैं, उनके लिए उपवास बड़ी रामबाण व्यवस्था है। एक तीस दिन उपवास कर लें, फिर आपके सपने पैदा करने की क्षमता तीव्र हो जाती है। कभी आपको अगर बुखार आया हो और खाना-पीना बंद रखना पड़ा हो तो आपको पता होगा, अगर लंघन करनी पड़ी हो तो आपको पता होगा, कि ऐसी-ऐसी चीजें दिखाई पड़ने लगती हैं जो कभी दिखाई नहीं पड़ी थीं। कभी खाट उड़ने लगती है, कभी आसमान में चले जाते हैं, कभी देवी-देवता दिखते हैं, कभी भूत-प्रेत भी दिखाई पड़ते हैं। और सब होने लगता है। लंघन में पड़े हुए बीमार आदमी को क्यों यह सब होने लगता है? क्या कारण है?
कारण है कि जैसे-जैसे शरीर की शक्ति कम होती है, मन की शक्ति ज्यादा हो जाती है। मन पर शरीर का काबू कम हो जाता है। मन बिल्कुल दौड़ने लगता है। इसलिए दिन में आप उतने सपने नहीं देख पाते जितना रात में देख पाते हैं। क्योंकि रात में शरीर थक कर गिर जाता है, मन मुक्त हो जाता है, इसलिए जो चाहें देखें।
सपने देखने का इंतजाम है, सपने देखने की व्यवस्था है, सिस्टम है। उस व्यवस्था में उपवास बड़ा कारगर उपाय है। जिसको भी इस तरह के सपने देखना हो, देवी-देवता, भूत-प्रेत, जो भी देखना हो, उसके लिए लंबे दिन तक भूखे रहने से बड़ा लाभ होगा।
एकांत भी बड़ी उपयोगी चीज है। भीड़ में सपना देखना मुश्किल हो जाता है, क्योंकि आस-पास के लोगों की मौजूदगी बाधा डालती है। एकांत में सपने आसान हो जाते हैं। इसलिए जंगल में भाग जाएं, किसी गुहा में छिप जाएं, वहां सपने आसान होते हैं। कभी अगर आपको एकांत में रहने का मौका मिला हो तो पता होगा। अगर घर के सब लोग चले गए हों और घर गांव के बाहर एकांत में हो, पत्ता खड़कता है तो ऐसा लगता है आया कोई! अब वह जो मन की सपने देखने की क्षमता है वह तीव्र हो गई है। वह पत्ते के खड़कने में भी किसी के पैर की आवाज सुनता है। सुबह आपने ही नहा कर लंगोट टांग दिया है। रात में दिखता है, कोई हाथ फैलाए हुए खड़ा है। आपने ही टांगा है, लेकिन लगता है कि कोई हाथ फैलाए खड़ा है। दूसरे की मौजूदगी हमें सपने देखने में बाधा डालती है। क्योंकि दूसरा क्या कहेगा! दूसरे की मौजूदगी हमारी बुद्धि को सुस्थिर रखती है। इसलिए जिनको सपने देखने में काफी रस लेना है, उन्हें भाग जाना चाहिए समाज से दूर। समाज से भागने की प्रवृत्ति सपना देखने की सुविधा की वजह से पैदा हुई। इधर पूना में देखना बहुत मुश्किल है सपना, चले जाएं हिमालय के किसी एकांत में, वहां सपना बहुत आसान हो जाता है।
भूखे रहें, एकांत में चले जाएं। सेक्स सप्रेशन भी सपना देखने की बड़ी अदभुत तरकीब है। अगर कोई व्यक्ति अपनी यौन-प्रवृत्ति को जोर से दबा ले, तो उसकी सपने की शक्ति ऐसी हो जाती है, जैसे किसी स्प्रिंग को दबा दिया हो, तो वह स्प्रिंग चीजों को जोर से वापस फेंकता है। इसलिए जो लोग सेक्स सप्रेसिव होते हैं, उनके सपने बढ़ जाते हैं। जिन लोगों ने काम की वृत्ति को दबाया है, उनकी रात सपने से भर जाती है। बहुत पहले यह समझ में आ गया कि अगर सपना देखना है ठीक से, तो सेक्स को दबाओ।
और ध्यान रहे, जिसने सेक्स को दबाया उसके सपने देखने की क्षमता इतनी
हो जाती है जिसका कोई हिसाब नहीं।
अब ये पागलखानों में जितने लोग बंद हैं, उनमें से सौ में से नब्बे काम
की वृत्ति को दबाने की वजह से पागल हैं। पागल का मतलब क्या है? पागल का मतलब है कि वह सपना इतना देखने लगा कि अब आंख खोल कर भी देखता है, अब आंख बंद करने की जरूरत नहीं है। आपको जब सपना देखना होता है तो आंख बंद करनी पड़ती है, उसको अब आंख बंद करने की जरूरत नहीं, आंख खोल कर देखता है। और आपका सपना आंख खोलने से टूट जाता है, उसका सपना आंख खोलने से नहीं टूटता।
आप देखें, एक आदमी पागल बैठा है, वह किसी से बात कर रहा है मजे से। कोई
है ही नहीं मौजूद, वह बात कर रहा है। इसको आप पागल कहेंगे। लेकिन एक भक्त भगवान से बातें कर रहा है, तो आप उनके चरण छुएंगे। दोनों एक ही स्थिति में

हैं। हां, थोड़ा फर्क हो सकता है कि यह पागल खतरनाक हो सकता है जो किसी से बातें कर रहा है, और यह जो भक्त भगवान से बातें कर रहा है यह खतरनाक नहीं होगा। बस इतना फर्क हो सकता है। यानी सोशिएली डेंजरस हो सकता है यह आदमी जो अभी किसी से बातें कर रहा है, तो इसको हम पागलखाने में बंद करेंगे। और यह जो आदमी भगवान से बातें कर रहा है, यह सामाजिक रूप से खतरनाक नहीं है। वैसे इसे भी हम तरकीब से एक तरह के पागलखाने में बंद कर देंगे। किसी मंदिर में बिठा देंगे, किसी मंच पर चढ़ा देंगे, जय-जय कार करेंगे, और समाज और इसके बीच में फासला खड़ा कर देंगे, एक दीवाल बना देंगे। कि तुम कृपा करके इधर मत आना और हम उधर न आएंगे। हम पूजा करेंगे, फूल फेंक देंगे, लेकिन बीच में डिस्टेंस रहेगा। वह हम इंतजाम कर लेंगे। मंदिर और यह सब, ये अच्छे किस्म के पागलों को कैद करने का हमने इंतजाम किया हुआ है। आश्रम और पागलखाना! आश्रम को भी हम गांव के बाहर बनवा देते हैं कि गांव के भीतर कृपा करके ज्यादा नहीं। हमको ही कभी पागलपन की खुजलाहट होगी तो हम उधर आ जाएंगे। आप कृपा करके इधर नहीं। एक पागलखाना बनाया, वहां हम खतरनाक किस्म के पागलों को बंद करते हैं।
लेकिन पागलपन का मतलब ही यह होता है कि आदमी को वस्तु-स्थिति दिखाई नहीं पड़ती, आदमी जो चाहता है वही देखने लगा है।
अगर हम दस भक्तों को एक ही कमरे में बंद कर दें; एक जीसस का भक्त हो, तो रात में जीसस से बातें करता रहेगा; और कृष्ण का भक्त हो, तो वह कृष्ण से बातें करता रहेगा; राम का भक्त हो, तो वह धनुर्धारी राम को देखता रहेगा। और उन तीनों को दूसरे के भगवान दिखाई नहीं पड़ेंगे। और सुबह झगड़ा भी हो सकता है कि कौन कहता है कि धनुर्धारी राम यहां थे! जीसस थे, राम तो नहीं थे! कृष्ण थे, कौन कहता है जीसस यहां थे! वे तीनों सुबह लड़ेंगे। क्योंकि उनका भगवान सिर्फ उन्हीं को दिखाई पड़ता है।
ध्यान रहे, सपने की एक क्वालिटी है--प्राइवेट होना। सपना जो है वह सदा प्राइवेट होता है। सपना कभी सामूहिक नहीं हो सकता। अब इस चीज को हम देख रहे हैं, इस डंडे को, तो हम सब देख रहे हैं। यह कलेक्टिव है, यह सामूहिक है। लेकिन अगर मैं कोई सपना देख रहा हूं, तो आपको उसमें साझीदार नहीं बना सकता। कोई भक्त किसी को भी अपने सपने में साझीदार नहीं बना सकता। और कोई पागल भी किसी को अपने पागलपन में साझीदार नहीं बना सकता। सब प्राइवेट हैं। इसलिए प्राइवेट चीज से थोड़ा सावधान रहना। उसमें थोड़ा खतरा है। उसमें डर यह है कि कहीं वह सपना ही न हो। उसमें डर यह है कि कहीं वह ऐसी बात न हो जो हमने कल्पित कर ली है। और हम कल्पित कर रहे हैं।
नहीं, न तो देवी-देवताओं को देखने से कोई अध्यात्म का संबंध है; न राम, कृष्ण, बुद्ध को देखने से कोई संबंध है। इनसे कोई संबंध नहीं है। संबंध किसी और बात से है। देखना है उसे जो सबको देख रहा है। दृश्य को नहीं देखना है, देखना है द्रष्टा को। अध्यात्म का संबंध नये-नये दृश्य पैदा करना नहीं है, अध्यात्म का संबंध सभी दृश्यों को विदा करके उसे देख लेना है जो सदा देखता रहा है।
हम इस टाकीज में बैठे हुए हैं, यह पीछे पर्दा है। इस पर फिल्म चलती हो,
इस पर फिल्म चलती हो, एक बुरी फिल्म चलती हो, एक हत्यारे की कहानी चलती हो, तो पर्दे पर चल रही है। फिर एक अच्छी फिल्म चलती हो, एक संत का जीवन चल रहा हो, तो भी पर्दे पर चल रहा है। और दोनों हालतों में आप सिर्फ देखने वाले हैं और पर्दे पर कहानी चल रही है--अच्छी चले, बुरी चले; शराब पीने की चले, त्याग-तपश्चर्या की चले; लेकिन पर्दे पर चल रही है, दृश्य पकड़े हुए है। नहीं, अध्यात्म का संबंध बुरी कहानी को हटा कर अच्छी कहानी रखने से नहीं, अध्यात्म का संबंध कहानी को हटा कर पर्दा खाली करने से है। ताकि पर्दा खाली हो जाए, देखने को कुछ न बचे, तो आप अपने पर लौटें और उसे देख पाएं जो अब तक सिर्फ देखता ही रहा है, लेकिन अपने को जिसने कभी भी नहीं पहचाना कि मैं कौन हूं? जो देखता है वह कौन है?
नहीं, महत्वपूर्ण यह नहीं है कि राम दिखाई पड़ते हैं, महत्वपूर्ण यह है
कि राम जिसको दिखाई पड़ते हैं वह कौन है? और अगर उसे देखना है तो राम को भी हाथ जोड़ कर कहना पड़ेगाः अपना धनुषबाण उठाओ और कृपा कर जाओ, इधर बाधा मत दो। अगर बुद्ध खड़े हो जाएं तो उनसे भी कहना पड़ेगाः अब बहुत देर हो गई, अब आप

जाइए। अगर जीसस भी सूली पर न मानते हों और लटकते ही चले जाते हों, तो उनसे कहनाः अब बंद करिए, अब यह सूली भी अपनी ले जाइए और आप भी जाइए। मुझे उसे जानना है जो मैं हूं। मैं अब दृश्यों में उत्सुक नहीं हूं।
लेकिन हमारा मन है बचकाना, वह दृश्य बदल लेता है। तो अधार्मिक दृश्य देखने वाला है आदमी, धार्मिक दृश्य देखने वाले लोग भी हैं। लेकिन कोई फर्क नहीं है, दृश्य में ही उलझे हैं। सवाल इस क्रांति का है कि दृश्य से चित्त विदा हो जाए और द्रष्टा पर पहुंच जाए। देखने वाले पर पहुंच जाऊं मैं। फिर वहां क्या दिखाई पड़ेगा? वहां राम दिखाई पड़ेंगे? कि बुद्ध? कि महावीर? नहीं, वहां मैं ही दिखाई पडूंगा।
और मजा यह है कि जो मैं हूं, जिस दिन मैं उसे जान लूंगा, उस दिन मैं राम को, बुद्ध को, कृष्ण को, मोहम्मद को, सबको जान लूंगा। क्योंकि जो मैं हूं, मेरा जो बहुत आंतरिक स्वभाव है, वही वे हैं। राम को और कृष्ण को भी दृश्य की भांति खड़ा करके हम नहीं जान सकते, उनको भी मैं अपने ही द्रष्टा-स्वरूप को अनुभव करके ही जान सकता हूं। अन्यथा नहीं जान सकता हूं।
जरथुस्त्र पहाड़ से उतर रहा है, और उसके शिष्यों ने उससे कहा है कि हमें अंतिम संदेश दे दो, क्योंकि अब वह विदा हो रहा है। तो उसने कहा कि अब शिष्यो, मुझे छोड़ो, और मैं जाता हूं।
एक वक्त आना चाहिए कि गुरु इतनी हिम्मत जुटा सके कि शिष्यों से कहे कि कृपा कर अब मुझे छोड़ो, अब मैं जाता हूं। शिष्य में भी इतनी हिम्मत होनी चाहिए कि एक दिन गुरु को कह सके कि अब कृपा करके मुझे छोड़ो और मैं जाता हूं।
लेकिन न गुरुओं में इतनी हिम्मत होती, न शिष्यों में। वे एक-दूसरे को पकड़े बांधे रहते हैं। और खुद भी डूबते हैं, दूसरे को भी डुबाते हैं। जरथुस्त्र ने उन शिष्यों से कहा, अब कृपा करके लौटो, अब मुझे जाने दो।
वे शिष्य कहने लगे, थोड़ी दूर और साथ ले लें।
जरथुस्त्र ने कहा, नहीं। और तुमसे मैं यह भी निवेदन करता हूं कि तुम मुझे भूल जाना। क्योंकि जब तक तुम मुझे याद रखोगे, तब तक तुम अपने को कैसे याद कर पाओगे?
यह जरथुस्त्र हिम्मतवर आदमी रहा होगा। किसी से यह कहना कि मुझे भूल जाना, मुझे भुला देना... मैं खतरनाक आदमी हूं, जरथुस्त्र ने कहा, क्योंकि तुमने अगर मुझे पकड़ लिया तो तुम अपने को कब पहचानोगे? तुम मुझे जाने दो। तुम भी मुझे छोड़ो और मैं भी तुम्हें छोडूं।
एक झेन फकीर हुआ है--बोकोजू। वह अपने मित्रों को कहा करता था, बुद्ध से सावधान रहना! बिवेअर ऑफ दि बुद्धा!
वे पूछते, क्या मतलब?
तो वह उनसे कहता कि बुद्ध से जरा सावधान ही रहना। क्योंकि जब सब छूट जाएगा, तब बुद्ध खड़े हो जाएंगे। और तब तुम उनमें अटक जाओगे। अटकना कहीं भी नहीं है। अगर कहीं भी अटके तो अटकना हो जाएगा। इससे क्या फर्क पड़ता है कि खूंटी लोहे की है कि सोने की? अटकने का सवाल है। नहीं, खूंटियां तोड़ देना। तो वह कहता था, बुद्ध से सावधान हो जाना। और अगर बुद्ध बीच में आएं, एक धक्का देकर अलग कर देना, कि कृपा करके हटिए रास्ते पर से! मुझे मुझ तक पहुंचने दीजिए, मेरे बीच में मत आइए।
और मजा यह है कि जिस दिन हम अपने पर पहुंचेंगे, उसी दिन हम बुद्ध पर पहुंच जाएंगे, राम पर और कृष्ण पर पहुंच जाएंगे। और जब तक हम दृश्य में उलझे रहेंगे, तब तक यह संभव नहीं है।
नहीं, सपने मत देखिए। सुंदर सपने भी मत देखिए। बहुत सपने देखे। सत्य
को देखिए! और सत्य वह है जो देख रहा है, सत्य वह नहीं है जो दिखाई पड़ रहा है। द्रष्टा सत्य है। और दर्शन, दृश्य, सब सपना है।
इसलिए मैं नहीं कहता कि देवी-देवताओं की चिंता में पड़िए। कि काली माता को देखिए, बनाइए मन में, सजाइए मन में, फिर हाथ जोड़ कर खड़े होइए भीतर, और फिर उनका राग करते रहिए। कुछ भी नहीं होगा, कुछ भी नहीं होगा। कुछ मतलब नहीं है, कोई प्रयोजन नहीं है। और बहुत हो चुका; आदमी का मन सदियों से यह करता रहा, आदमी कहीं भी नहीं पहुंचा है। नहीं, अब सपने छोड़ देने पड़ेंगे, अपने को ही जानना पड़ेगा।

लेकिन बहुत कठिन तो है ही। कठिन इसलिए है कि हम सपनों में खो जाते हैं। फिल्म चलती है तो हम भूल जाते हैं कि जो चल रहा है पर्दे पर, वहां कुछ भी नहीं। एक सुंदर स्त्री आती है, तो हमारी पीठ जो है कुर्सी छोड़ देती है, आगे झुक जाती है। देखा है आपने हॉल में! और सुंदर स्त्री क्या है वहां पर्दे पर? कुछ भी नहीं है, सिर्फ धूप-छांव का खेल है। कुछ नहीं है, सिर्फ प्रकाश की कम-ज्यादा फेंकने की तरकीब है। कहीं प्रकाश ज्यादा पड़ रहा, कहीं कम पड़ रहा और खेल बन गया है। और रीढ़ हट गई बाहर और आप सम्हल कर बैठ गए हैं कि एक सुंदर स्त्री आ गई है। अगर कोई मरता है तो आपकी आंख में आंसू भी आ जाते हैं। इसलिए हॉल में अंधेरा बड़ा सहयोगी होता है। जल्दी से अपने रूमाल से पोंछ लिया, और बगल वाले को देख लिया कि किसी ने देखा नहीं है।
लेकिन किसी ने न देखा हो, आपने तो देख ही लिया। पर्दा धोखा दे गया। एक कहानी चलती थी, और आप रो भी लिए, और हंस भी लिए, और परेशान भी हो लिए। और था कुछ भी नहीं। खाली पर्दा है वहां। और उस पर्दे पर धूप-छांव का खेल है। बहुत गहरे में पूरी जिंदगी भी एक पर्दा है और धूप-छांव का खेल है। लेकिन वहां भी रोना है, धोना है।
एक बहुत विचारशील आदमी हुए हैं--विद्यासागर। एक नाटक देखने गए थे। और बड़े सात्विक आदमी थे, बुराई देख न सकते थे। जिनको हम साधु-पुरुष कहें, ऐसे थे। सामने ही बैठे थे। वह नाटक चलता था। और नाटक की कहानी में एक पात्र है, वह एक स्त्री को परेशान कर रहा है। वह करता ही चला जा रहा है। वह सब तरह से स्त्री को परेशान कर रहा है। और आखिरी चरम सीमा वहां आती है कथा में, जहां एक जंगल में, एकांत रात्रि में वह स्त्री को पकड़ लेता है, वह उससे व्यभिचार करना चाहता है। बस, विद्यासागर भूल गए, छलांग लगा कर चढ़ गए मंच पर, निकाला जूता और लगे मारने उस आदमी को।
बुद्धिमान भी बड़े कम बुद्धिमान होते हैं। विद्यासागर थे, लेकिन भारी अविद्या हो गई। वह आदमी जो था, जो अभिनेता था, उसने ज्यादा बुद्धिमानी प्रकट की। सच में ही अगर कोई अभिनेता ठीक से अभिनय करे तो बहुत बुद्धिमान हो जाता है। क्योंकि अभिनय करने का मतलब होता है, वह जानता हैः जो कर रहा हूं, झूठ है; जो कर रहा हूं, झूठ है। धीरे-धीरे उसे यह भी दिखाई पड़ने लगता हैः बाहर भी जो कर रहा हूं वह भी झूठ है। फिल्म में कहते-कहते कि मैं तुम्हें बहुत प्रेम करता हूं, और जानता है बिल्कुल नहीं करता। कल जब अपनी पत्नी से कहता है, मैं तुम्हें बहुत प्रेम करता हूं, तब भी जान लेता है, नहीं करता हूं, एक लंबा अभिनय चल रहा है। वह अभिनेता बहुत बुद्धिमान निकला, उसने विद्यासागर का जूता हाथ में लेकर सिर से लगा लिया, और उसने लोगों से कहा कि इससे बड़ा पुरस्कार मेरे जीवन में मुझे कभी नहीं मिला। मेरा नाटक इतना सच्चा मालूम पड़ सकता है, और वह भी विद्यासागर को! यह जूता वापस न लौटाऊंगा!
विद्यासागर की मुसीबत तो बहुत हो गई होगी। बेचारे कैसे मंच से उतरे होंगे! कैसे कुर्सी पर वापस बैठे होंगे! कैसी बेचैनी हुई होगी! भूल गए एक क्षण में।
हम सब भूल जाते हैं। नाटक चलता है पर्दे पर, वह भी हमें पकड़ लेता है। दृश्य ने हमें इतना पकड़ा है कि हमारी पूरी जिंदगी दृश्यों में बीत जाती है। दिन भर सपना है, रात भर सपना है। और हमें द्रष्टा का कभी पता ही नहीं चलता कि वह जो देख रहा है। जिस दिन हमें पता चल जाएगा उसका जो देख रहा है, उस दिन सब दृश्य सपने हो जाएंगे। देवी-देवता ही नहीं, वह हमारे चारों तरफ जो जगत फैला हुआ है, वह जगत भी एक सपने का हिस्सा हो जाएगा। काली और राम और कृष्ण ही नहीं, पति-पत्नी, मित्र और शत्रु, वे भी चारों तरफ एक बड़े नाटक के हिस्से हो जाएंगे।
मैं छोटा था तो अपने गांव में रामलीला देखने जाता था। मैं सदा हैरान होता था कि वहां पीछे क्या होता होगा? पर्दे के पीछे, वह जो ग्रीन-रूम होता है, वहां क्या होता है? क्योंकि सारे लोग वहीं से आते हैं। राम भी वहीं से निकलते हैं, और रावण भी वहीं से निकलते हैं, एक ही दरवाजे से! मैं सदा चिंतित होता था कि इस दरवाजे के पीछे क्या राज है? राम भी वहीं से आते हैं, रावण भी वहीं से आते हैं! सीता को चुराने वाला भी वहीं से आता, बचाने वाला

भी वहीं से आता, सीता भी वहीं से आती! फिर तीनों वहीं चले जाते! उस कमरे में क्या होता है?
तो मैं पीछे का पर्दा उठा कर उस ग्रीन-रूम में घुस गया। वहां तो मैं बड़ा चकित हुआ! क्योंकि वे जो राम और रावण बाहर बड़ा युद्ध कर रहे थे, वे वहां बैठ कर सिगरेट पी रहे थे दोनों! गपशप कर रहे थे! मैंने कहा कि यह तो बड़ा आश्चर्यजनक मामला है! और पर्दे पर तो ये बड़ा धनुषबाण खींच कर, और बड़ी आवाज, और पैर पटक कर बातें करते हैं। यहां सिगरेट पी रहे हैं! तब से मुझे निरंतर यह ख्याल रहा है कि जिंदगी के पर्दे के पीछे भी कोई आश्चर्य नहीं है कि राम और रावण बैठ कर सिगरेट पीते हों। कुछ बहुत आश्चर्य नहीं है। क्योंकि जिंदगी के पर्दे पर भी हम एक ही जगह से आते हैं और एक ही जगह वापस लौट जाते हैं। ग्रीन-रूम एक ही है। पर्दे पर आना-जाना तो होता रहता है। लेकिन पीछे लौटते-आते एक ही रास्ता है। उसी अंधकार से हम आते हैं जन्म के और मृत्यु में उसी अंधकार में वापस लौट जाते हैं। पर्दे के पीछे राम और रावण में बहुत फर्क नहीं है।
इसलिए जो जानते हैं वे इस जगत को लीला कहेंगे, नाटक कहेंगे। जो जानते हैं वे इस जगत को खेल कहेंगे। लेकिन यह जगत लीला तभी होगा जब हमें द्रष्टा का थोड़ा ख्याल आ जाए। नहीं तो लीला ही सत्य हो जाती है, नाटक ही सत्य हो जाता है, सपना ही सत्य हो जाता है।
क्या आपने कभी ख्याल किया कि सपने में कभी पता नहीं चलता कि जो मैं देख रहा हूं यह सपना है! कितनी दफे सपना आपने देखा जिंदगी में? रोज सुबह उठ कर कहते हैं सपना था। फिर रात सोते हैं और फिर सपना देखते हैं, लेकिन सपने में ख्याल नहीं आता कि जो देख रहा हूं यह सपना है। फिर सपना पकड़ लेता है। फिर सुबह उठ कर कहते हैं कि सब सपना था। रात फिर आती है और फिर सपना पकड़ लेता है। सपने की पकड़ बड़ी गहरी मालूम पड़ती है। हजार-हजार अनुभव के बाद भी जब सपना आता है, तो एकदम पकड़ लेता है, सपना सच हो जाता है।
ध्यान रहे, जब सपना सच होता है तब आप झूठे हो जाते हैं तत्काल। दो में
से एक ही चीज सत्य हो सकती हैः या तो दृश्य, या द्रष्टा। जब दृश्य सत्य हो जाता है तो द्रष्टा झूठा हो जाता है। पता ही नहीं चलता कि है। जब द्रष्टा लौटता है तो दृश्य झूठा हो जाता है। सुबह जब आप जागते हैं और द्रष्टा की तरह देखते हैं, तब आपको पता चलता है कि सपना था, झूठा था। रात जब सोते हैं, द्रष्टा सो जाता है, सपना सच हो जाता है, दृश्य सत्य हो जाता है।
दुनिया में दो ही तरह के लोग हैं। एक वे जिन्हें दर्शन सत्य है, दृश्य सत्य है; और एक वे जिन्हें द्रष्टा सत्य है। और दोनों एक साथ सत्य नहीं हो सकते। कभी हुए नहीं हैं। इसलिए जिन्होंने कहा, जगत माया है, उनका मतलब कुछ और नहीं है। उनका मतलब केवल इतना हैः सपना है। उनका मतलब केवल इतना हैः दृश्य है। और जो देख रहा है वह गहरे में सत्य है। सब्स्टेंशिएल, तात्विक वह है जो देख रहा है। जो दिखाई पड़ रहा है, वह अभी है, अभी मिट जाएगा; अभी बना है, अभी खो जाएगा। लेकिन देखने वाला?
रात जब मैं सपना देखता हूं तब भी मैं होता हूं। नहीं तो सुबह याद कौन करेगा? सपना तो मिट जाता है, मैं बच जाता हूं सुबह। दिन भर सपना देखता हूं, तब भी मैं होता हूं। रात दिन भर का सपना फिर खो जाता है, लेकिन मैं फिर बच जाता हूं।
बच्चा था तब मैंने बचपन का सपना देखा था, लेकिन मैं था। अब जवान हूं तो जवानी का सपना देख रहा हूं, अब मैं हूं। बूढ़ा हो जाऊंगा तो बूढ़े होने का सपना देखूंगा, तब भी मैं होऊंगा। बचपन में, बुढ़ापे में, जवानी में सपना रोज बदलता रहेगा, लेकिन देखने वाला रोज वही है, वही है, वही है।
एक वह है जो बदल रहा है, और एक वह है जो अनबदला देख रहा है।
धर्म, अध्यात्म उसकी खोज है जो देख रहा है। संसार उसकी खोज है जो दिखाई पड़ रहा है। जो दिखाई पड़ रहा है उसकी खोज में जो पड़ गया, वह भटकता चला जाएगा। क्योंकि दिखाई पड़ने वाला प्रतिपल बदल रहा है, आप खोजोगे कैसे? आप जब तक पहुंचोगे तब तक सब बदल चुका है।
एक छोटी सी कहानी, और अपनी बात मैं पूरी करूंगा।
किसी गांव में एक आदमी था। बहुत चालाक, बहुत होशियार। गांव के लोग किसी मुसीबत में पड़ते तो उससे सवाल पूछने जाते। वह चालाक होशियार आदमी

था। अपना ताला भी लगाता तो दो-तीन बार लौट कर हिला कर देख लेता, कि सच में लगा है न! एक दिन नाईबाड़े में बाल बनवाने गया था। बाल तो बनवा लिए, रुपया दिया, आठ आने हुए थे, आठ आने नाई के पास वापस करने को न थे। नाई ने रुपया तो खीसे में रख लिया और कहा कि कल बाजार आएं तब पैसे बाकी ले लेना।
उस आदमी ने कहा, पता नहीं यह आदमी कल तक नाई रहे कि न रहे। जमाना बड़ा खराब है। कल शर्मा लिख ले कि वर्मा लिख ले, कुछ पक्का पता नहीं है। नाम बदल ले, जाति बदल ले, दुकान बदल ले। यहां सब बदल रहा है। इधर कुछ पक्का पता ही नहीं है। अभी आदमी चीफ मिनिस्टर था, अभी चपरासी है। अभी चपरासी है, अभी चीफ मिनिस्टर हो गया। कुछ जहां पक्का नहीं, जहां सब गड़बड़ हो गया है, वहां इस नाई का क्या भरोसा कि कल आठ आने दे न दे। तो कुछ पक्का इंतजाम कर लेना चाहिए कि इसका पक्का पता रहे। बोर्ड बदलने में कितनी देर लगती है! जरा में बदल लेता है। एक आदमी कांग्रेसी है, एक मिनट में गैर-कांग्रेसी हो जाता है। तो बोर्ड तो बदल सकता है। तो यह बोर्ड अपना बदल ले और कल कुछ गड़बड़ हो जाए, तो आठ आने गए। वह जो आदमी ताला तीन दफे हिलाता था, साधारण आदमी न था। उसने कहा, कुछ ऐसा इंतजाम करो जिसे यह बदल ही न सके। और उसने इंतजाम कर लिया। एक भैंस उस नाईबाड़े के सामने बैठी थी। उसने कहा कि ठीक है, इसको क्या पता कि यह भैंस यहां बैठी है। कल जहां भैंस बैठी होगी, हम फौरन पकड़ लेंगे कि बेटा, कितना ही बदलो... ।
कल वह अपना आया निश्चिंत। भैंस कहीं बैठी थी जरूर, आज भी बैठी थी। देखा उसने, उसने कहा, ठीक किया जो हमने भैंस से संबंध बांधा। हद्द हो गई! बोर्ड तो बदल ही लिया है। कल जहां नाईबाड़ा लिखा था, आज वहां मिठाई वाला लिखा है। कल जहां नाई की दुकान थी, आज वहां मिठाई बिक रही है। उसने कहा, हद हो गई! हमने भी ठीक किया जो भैंस को ख्याल में रखा। अगर बोर्ड को ख्याल में रखते तो फंस ही जाते। अंदर जाकर उचक कर उसने उस मिठाई वाले की गर्दन पकड़ ली, उसने कहा, हद्द कर दी तूने भी। आठ आने के पीछे इतनी बदलाहट करनी पड़ती है! उस मिठाई वाले ने कहा, आप बात क्या कर रहे हैं? उसने कहा, गड़बड़ मत कर। मैं ऐसा इंतजाम कर गया हूं पक्का। वह भैंस बाहर की बाहर बैठी है अभी भी। अब भैंस का कोई भरोसा है कि वह वहीं बैठी हो?
हम जिंदगी भर दृश्यों के लिए भाग रहे हैं। दृश्यों का कोई भरोसा है कि
वे वहीं होंगे? क्या आप वही सपना आज रात फिर देख सकते हैं जो आपने कल रात देखा था? उपाय करके देखें। कितना ही उपाय करें, उसे दुबारा देखना बहुत मुश्किल है। वही दुबारा। कल जिस पत्नी को आप मिले थे अपनी, आज आप उसी पत्नी से मिल सकते हैं दुबारा? आशा रखते हैं, इसी से दिक्कत होती है। कल जो स्त्री थी वह आज कहां, गंगा का बहुत पानी बह गया! कल उसने प्रेम किया था, हो सकता है आज गाली दे। तब मुश्किल होगी मन में कि यह कैसी इनकंसिस्टेंसी! कल यह औरत प्रेम की बात करती थी, आज गाली देती है!
आप भी भैंस को पहचान कर घर चले गए थे। आपने जो चीज पकड़ी थी वह बदलने वाली थी। स्त्री भी बदलेगी, बेटा भी बदलेगा। मां अपने बेटे से कहती हैः शादी होने के बाद तू कैसा हो गया? कल तक मेरी गोद में सिर रखता था, अब मेरी तरफ देखता ही नहीं! भैंस को पकड़ लिया। अब मुश्किल में पड़ गए। अब वह बेटा किसी और स्त्री की गोद में सिर रख रहा है, वह कब तक तुम्हारी गोद में सिर रखता रहेगा! बदलने वाले को पकड़ कर हम बड़ी झंझट में पड़े हुए हैं, चौबीस घंटे। और वह बदलने वाला बदला जा रहा है, कोई उपाय नहीं है। और ऐसा नहीं कि वही बदला जा रहा है, हम भी बदले जा रहे हैं। जहां दृश्य की दुनिया है वहां सब बदल रहा है; वहां कुछ भरोसा नहीं है।
तो जो दृश्य की खोज में दौड़ रहा है वह जिंदगी भर पीड़ा में, परेशानी में रहेगा। और ऐसा नहीं कि हम ही दौड़ रहे हैं, बड़े बुद्धिमान दौड़ जाते हैं। अब रामचंद्र दौड़ गए स्वर्णमृग के पीछे! हम भी एक दफा सोचते कि सोने का हिरन होता भी है? लेकिन राम दौड़ गए सोने का हिरन देख कर। सीता का भी मन हुआ कि ले आओ पकड़ कर इस स्वर्ण के मृग को! स्वर्ण के मृग के पीछे राम भी दौड़ जाते हैं? सोने का कहीं हिरन होता है? लेकिन राम दौड़ जाते हैं।
हम भी दौड़ रहे हैं। असल में हमारे भीतर भी राम ही दौड़ रहे हैं। दौड़ेगा कौन? स्वर्णमृग दिखाई पड़ रहे हैं; दौड़े चले जा रहे हैं। दृश्यों की एक

दुनिया है, वहां हम दौड़ते-दौड़ते-दौड़ते, न मालूम कितने अनंतकाल से दौड़ते हैं।
लेकिन कब तक दौड़ते रहिएगा? क्या अभी काफी दौड़ नहीं हो गई? समय नहीं आ गया कि हम उसे पहचानें जो दौड़ रहा है? उसे पहचानें जो देख रहा है?
अगर समय आ गया है उसे पहचानने का, तो अब नई दौड़ें न बनाएं देवी-देवताओं की, इसकी, उसकी। नहीं, अब नई दौड़ नहीं चाहिए। अब तो दौड़ का ठहरना चाहिए। और उसे देखना है जो सब दौड़ को सदा देखता रहा है। समाधि उसका द्वार है।
आज रात्रि, जो मित्र तीन दिन तक समाधि के प्रयोग के लिए आते रहे हैं,
या तीन दिन में से एक भी दिन जो मित्र आया हो, आज की रात्रि सिर्फ वही आएंगे जो तीन दिन आए हैं या कम से कम एक दिन आए हों, क्योंकि आज एक घंटे मौन प्रवचन, साइलेंट कम्युनिकेशन रखा है।
शब्द से वह कहने की कोशिश करता हूं जो नहीं कहा जा सकता, इसलिए मैं भी मुश्किल में पड़ता हूं, आप भी मुश्किल में पड़ते हैं। शब्द से वह कहता हूं जो कहा ही नहीं जा सकता। शब्द से आप वह सुनते हैं जो सुना ही नहीं जा सकता। इसलिए कठिनाइयां बिल्कुल स्वाभाविक हो जाती हैं।
आज रात घंटे भर मैं चुप बैठूंगा आपके बीच, कुछ मौन से कहने की कोशिश करूंगा। आप सिर्फ मौन में सुनने की कोशिश करना, और कुछ न करना। कुछ भी पता नहीं, शायद जो नहीं शब्द में कहा जा सकता वह निःशब्द में आप तक पहुंच जाए। पहुंच सकता है। शब्द ही एकमात्र मार्ग नहीं हैं पहुंचाने का। सच तो यह है शब्द कोई मार्ग ही नहीं हैं। चूंकि मौन हम नहीं हो सकते हैं, इसलिए शब्द में बात करनी पड़ती है। काश हम चुप हो सकें तो शब्द की कोई जरूरत नहीं, जो कहना है वह बिना कहे भी कहा जा सकता है।
इसलिए जो मित्र आते हों, नया मित्र कोई भी न आए आज, एक दिन कम से कम पिछले तीन दिनों में कोई आया हो तो ही। नया मित्र न आए। अन्यथा घंटा भर उसे समझ के बाहर हो जाएगा कि क्या हो रहा है। जो मित्र आते हैं वे स्नान करके आएंगे, ताजे कपड़े पहन कर आएंगे। और घर से ही चुप होकर चल पड़ेंगे। साढ़े आठ बजे के पहले ही सबको पहुंच जाना है, अपनी-अपनी जगह चुपचाप बैठ जाना है। मैं आकर बैठ जाऊंगा, घंटे भर चुप आपके पास रहूंगा। अगर उस बीच किसी को भी मेरे पास आने जैसा लगे--लगे तो ही--तो चुपचाप उठ कर मेरे पास दो मिनट आकर बैठ जाएगा। दो मिनट से ज्यादा नहीं। उठ कर वापस लौट जाएगा। कोई किसी को देख कर नहीं आएगा। और कोई, अगर मन में उठे तो संकोच से रुकेगा भी नहीं, चुपचाप उठ कर आकर बैठ कर वापस लौट जाएगा। देखें, शायद मौन में वह संवाद हो सके जो शब्द से नहीं हो सकता है।
मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

समाधि के द्वार पर
छठवां प्रवचन

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, असंग्रह

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक मित्र ने पूछा हैः अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, असंग्रह आदि व्रतों के लिए गांधी जी ने करने के लिए बोला है, और पतंजलि ने भी इन पर जोर दिया है। तो क्या समाधि के पहले इन्हें साधना आवश्यक है? या इनके बिना ही समाधि तक पहुंचा जा सकता है?

समाधि न मिले तो कोई अहिंसक नहीं हो सकता है, न अपरिग्रही हो सकता है,
न ही सत्य को उपलब्ध हो सकता है। अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, और सब समाधि के परिणाम हैं, कांसीक्वेंसेस हैं, कारण नहीं, कॉ.जे.ज नहीं। अहिंसा को साध कर कोई समाधि तक नहीं पहुंचता है, समाधि तक जो पहुंच जाता है उसके जीवन में अहिंसा फलित होती है। ये फूल की तरह हैं, बीज की तरह नहीं। बोना तो पड़ता है समाधि के बीज को...
जीवन को समझने में, क्या बीज है और क्या फूल है, अक्सर भूल हो जाती है। अहिंसा, ब्रह्मचर्य, सत्य, अपरिग्रह समाधि के पौधे में लगे फूल हैं। और अगर किसी ने सीधा फूलों को चाहा, तो सिर्फ बाजार से नकली फूल खरीद सकता है, और कुछ भी नहीं कर सकता।
पौधे के बिना फूल नहीं होंगे। कागज के मिल सकते हैं, प्लास्टिक के मिल सकते हैं।
गांधी जी जिसे अहिंसा कहते हैं वह मेरी दृष्टि में अहिंसा नहीं है, अत्यंत कागज की अहिंसा है। समाधि के पौधे पर वह नहीं लगी है। समझ लेना बहुत उपयोगी है, क्योंकि हमारे मन में इस तरह की बहुत भ्रांतियां हैं। इसीलिए गांधी जी की अहिंसा में हिंसा का तत्व निरंतर मौजूद है। गांधी जी अपनी अहिंसा से भी वही काम ले रहे हैं जो हिंसा से कोई लेता है।
हिंसा का मतलब हैः कोएर्सन। हिंसा का मतलब हैः दूसरे को दबाना। अगर मैं एक छुरा लेकर आपकी छाती पर खड़ा हो जाऊं और कहूं कि मेरी बात मानो अन्यथा तुम्हें छुरा मार दूंगा, तो यह हिंसा है। और अगर मैं छुरे की धार अपनी छाती की तरफ कर लूं और कहूं कि मेरी बात मानो अन्यथा मैं छुरा मार लूंगा, तो यह अहिंसा कैसे है?
गांधी जी के सब अनशन हिंसात्मक हैं। इसलिए गांधी जी की अहिंसा की निरंतर बातचीत के बाद भी इस मुल्क में हिंसा ही फलित हुई, अहिंसा फलित नहीं हो सकी। हिंदुस्तान भी बंटा, लाखों लोग भी मरे, और गांधी का अंत भी हिंसा में ही हुआ। अहिंसा नहीं है। लेकिन गांधी भी भ्रम में हैं और उनके भक्त भी भ्रम में हैं। अहिंसा का फूल लगता ही समाधि में है। इन दोनों बातों में बुनियादी फर्क हैं। अगर हम बाजार से अहिंसा खरीद लाएं, उसमें, कागज के फूल में और असली फूल में कुछ बुनियादी फर्क हैं।
पहला फर्क तो यह है कि जब अहिंसा समाधि से निकलती है तो हिंसा से लड़ कर नहीं निकलती। जब समाधि आती है तो हिंसा विसर्जित हो जाती है, जो शेष रह जाता है वह अहिंसा है। अहिंसा हिंसा के विपरीत नहीं है कि आप हिंसा से लड़ कर और अहिंसक हो जाएंगे। अहिंसा का मतलब हैः हिंसा का अभाव। जब समाधि में आपको दिखाई पड़ता है कि मैं और तू में कोई फर्क ही नहीं है, जब समाधि में यह बोध होता है कि मैं ही हूं या तू ही है, एक ही है, तो फिर हिंसा का मार्ग नहीं रह जाता, उपाय नहीं रह जाता। किसे मारें? किसे सताएं? अपने को तो कोई सताना चाहता नहीं। मैं ही हूं, अगर यह बोध हो जाए, तो एक अहिंसा फलित होगी जो बहुत भिन्न प्रकार की होगी। उसमें हिंसा का कोई लेश भी नहीं है।
एक और तरह की अहिंसा है--झूठी, मिथ्या। वह अहिंसा ऐसी है कि हिंसा से
लड़ कर उपलब्ध होती है। हिंसा है, उससे लड़ कर दबाओ और अहिंसक बनो। हिंसा को मिटाओ और अहिंसक बनो। हिंसा को दबाओ और अहिंसक बनो।

अब यह प्रक्रिया समझने जैसी है कि अगर कोई हिंसक चित्त हिंसा को दबाने की कोशिश करके अहिंसक बन जाए, तो ऊपर से अहिंसक होगा, भीतर दबी हुई हिंसा सदा शेष रह जाएगी। वह हिंसा नये-नये रूपों में निकलना शुरू होगी। उस हिंसा के बहुत नये-नये रूप होंगे। पहचानना बहुत मुश्किल हो जाएगा। इसलिए ठीक सच्ची हिंसा भी बेहतर है झूठी अहिंसा की बजाय। क्योंकि धोखा बहुत है, पहचान में नहीं आता।
यह जो मेरे भीतर हिंसा है, अगर मैं इस हिंसा से लडूं, तो लड़ेगा कौन? मैं ही लडूंगा। हिंसा को दबाएगा कौन? मैं ही दबाऊंगा। मैं जो कि हिंसक हूं। मेरे दबाने में भी हिंसा होगी। मेरे हिंसा से लड़ने में भी हिंसा होगी। और मेरी वह जो हिंसा की वृत्ति है, वह जो दूसरों से लड़ती थी, अपनी ही हिंसा से लड़ कर तृप्त होने लगेगी। अपने से ही मैं लडूंगा। दूसरे से जब कोई लड़ता है तो हमें दिखाई पड़ जाता है, लेकिन जब कोई अपने से ही लड़ता है तो हमें दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन अपने से लड़ना भी उतनी ही हिंसा है जितना दूसरे से लड़ना। असल में, लड़ने में हिंसा है।
तो जो व्यक्ति नैतिक रूप से अहिंसक बनने की कोशिश करेगा, वह लड़ेगा। जो व्यक्ति चेष्टा करेगा ब्रह्मचर्य धारण करने की, वह करेगा क्या? वह सेक्स से लड़ेगा। वह दबाएगा। वह काम की वासना को भीतर दबाएगा। वह भीतर दब कर और अनकांशस, और अचेतन में बैठ जाएगी। दिन भर वह ब्रह्मचर्य से रहेगा, रात सपनों में अब्रह्मचर्य आ जाएगा।
गांधी जी कहते थे कि जागते में तो मैंने काम पर विजय पा ली है, लेकिन नींद में नहीं। नींद में सपनों में ब्रह्मचर्य खलित हो जाता है, टूट जाता है। सपने आ जाते हैं जो अब्रह्मचर्य के हैं।
आएंगे ही। उसमें गांधी का कसूर नहीं, गांधी की प्रक्रिया का कसूर है। दिन भर दबा सकते हैं आप, रात कौन दबाएगा? आप सो गए हैं, दबाने वाला सो गया है, पहरेदार सो गया है। जिसे दबाया है वह रात में बाहर निकलेगा।
इसलिए साधु-संन्यासी सोने से भी डरने लगते हैं, नींद से भी घबड़ाने लगते हैं। अब नींद जैसी निर्दोष चीज भी डराने लगती है। क्योंकि दिन भर जिसे दबाया है वह नींद में लौट आता है। वह कहीं जाता नहीं है, वह भीतर छिप जाता है। वह कहता है, अभी नहीं, मौका मिलेगा तब निकल आऊंगा। और फिर जो भीतर छिप जाता है, उसकी प्रक्रिया बड़ी छिपी हो जाती है। वह नये-नये रास्तों से दूसरों को सताने और दबाने का मार्ग खोजने लगता है।
लेकिन अच्छे रास्ते भी हैं सताने के। जिनको हम अच्छे लोग कहते हैं वे अच्छे रास्ते से सताते हैं, वे ढंग से सताते हैं। और उनका सताना इतना धार्मिक ढंग का होता है कि पकड़ना भी मुश्किल हो जाता है कि वे सता रहे हैं। अपने को भी सताते हैं, दूसरे को भी सताते हैं।
एक आदमी को भूखा मारने में हम कहेंगे हिंसा है। और खुद आदमी उपवास करके भूखा मरे तो हम कहेंगे तपश्चर्या है। आत्महिंसा तपश्चर्या हो जाती है। अपने पर हिंसा करना तपश्चर्या हो जाती है। अपने को सताना और टार्चर करना तपश्चर्या हो जाती है।
दो तरह के हिंसक लोग हैं, अंग्रेजी में दो शब्द हैंः सैडिस्ट और मैसोचिस्ट। सैडिस्ट उसे कहते हैं जो दूसरे को सताए और मैसोचिस्ट उसे कहते हैं जो अपने को सताए। आत्मपीड़क और परपीड़क, दो तरह की हिंसाएं हैं। लेकिन हम आत्मपीड़क हिंसा को अहिंसा समझ कर बैठे हुए हैं। पहचान मुश्किल हो जाती है--कि यह आत्मपीड़क हिंसा भी हिंसा ही है, और खतरनाक भी है।
अंबेदकर के खिलाफ गांधी जी ने अनशन किया था। वे कहते थे कि मेरे अनशन
से दूसरे का हृदय-परिवर्तन होगा। कभी हुआ नहीं। पूरे उनके जीवन में किसी का हृदय-परिवर्तन हुआ दिखाई नहीं पड़ा। अनशन उन्होंने बहुत बार किए, हृदय-परिवर्तन किसी का भी नहीं हुआ। अंबेदकर के खिलाफ किया हुआ था। और अंबेदकर, गांधी जी मर न जाएं, इसलिए झुक कर राजी हो गया। लेकिन अंबेदकर ने पीछे कहा कि मेरा कोई हृदय-परिवर्तन नहीं हो गया है, और न मैं इस बात से राजी हो गया हूं कि गांधी जो कहते हैं वह ठीक है, मैं तो सिर्फ इस बात से झुक गया हूं कि नाहक मेरे ऊपर गांधी की हत्या का बोझ न पड़े।
गांधी आत्महत्या करने की तैयारी दिखा देते हैं जल्दी से। उसको सत्याग्रह कहेंगे। असल में कोई भी आग्रह सत्य का कभी होता ही नहीं। सब

आग्रह असत्य के होते हैं। आग्रह में ही असत्य छिपा हुआ है। जब मैं कहता हूं आग्रहपूर्वक कि ऐसा तुम्हें भी करना पड़ेगा, तभी हिंसा शुरू हो जाती है। जब मैं दूसरे को कहता हूं कि ऐसा करना पड़ेगा, तभी हिंसा भीतर से आकर खड़ी हो जाती है। दूसरे को दबाने की चेष्टा ही हिंसा है।
लेकिन कोई अपने को भी दबा सकता है।
नहीं, समाधि के पहले कोई अहिंसक हो ही नहीं सकता। समाधि के पहले बस दो
ही तरह के हिंसक हम हो सकते हैं--प्रकट हिंसक, अप्रकट हिंसक। लेकिन समाधि कहीं और ही ले जाती है। समाधि वहां ले जाती है जहां मैं और तू ही मिट जाता है। समाधि वहां ले जाती है जहां मन ही शून्य हो जाता है। जहां से हिंसा उठती थी वह आधार ही गिर जाता है।
ऐसा नहीं है कि हिंसा के विपरीत अहिंसा पैदा हो जाती है। नहीं, हिंसा
के न रह जाने पर अहिंसा शेष रह जाती है। इसलिए अहिंसा नकारात्मक शब्द है। अहिंसा का मतलब हैः जहां हिंसा नहीं है। निगेटिव है। उसका कुल इतना मतलब है कि जहां हिंसा खो गई है, वहां जो शेष रह गया है वह अहिंसा है। लेकिन हमारी प्रक्रिया उलटी है। क्रोधी आदमी अक्रोधी होने की कोशिश कर रहा है, हिंसक अहिंसक होने की कोशिश कर रहा है, चोर अचोर होने की कोशिश कर रहा है, बेईमान ईमानदार होने की कोशिश कर रहा है।
अब बेईमान ईमानदार होने की कोशिश में भी बेईमानी कर जाएगा। वह बेईमान है! हिंसक अहिंसक होने की कोशिश में ही हिंसा दिखा देगा। क्रोधी अक्रोधी होने की चेष्टा में ही क्रोध को पूरा का पूरा प्रकट कर लेगा। लेकिन पहचान मुश्किल होती है। पहचान मुश्किल होती है, क्योंकि हम इतना दबा सकते हैं अपने भीतर कि हमें खुद भी पता न रह जाए कि हमने कहां दबा दिया है। लेकिन वह मौके-बेमौके निकल सकता है।
गांधी जी निरंतर कहते थे, मेरा कोई वाद नहीं है, मेरा कोई सिद्धांत नहीं है, मैं तो... गांधीवाद जैसी कोई चीज ही नहीं है। बड़ी विनम्र बात थी, बहुत ह्युमिलिटी की बात थी। और हमें लगता था कि विनम्रता से यह बात कही जा रही है।
कराची में एक कांफ्रेंस चलती थी और गांधी जी वहां बोलते थे। वहां कम्युनिस्टों ने काले झंडे दिखाए और गांधीवाद मुर्दाबाद के नारे लगाए। तो गांधी माइक पर बैठे थे। निरंतर तो जब भी कोई कहता था गांधीवाद, तो वे कहते थे, गांधीवाद जैसी कोई चीज ही नहीं है। लेकिन उस दिन जब गांधीवाद मुर्दाबाद के लोगों ने नारे लगाए और काले झंडे दिखाए, तो उनके मुंह से एकदम निकल गयाः गांधी मर सकता है, लेकिन गांधीवाद अमर है!
वह अचेतन में जो छिपा था वह प्रकट हो गया। वह कहीं भीतर कोने में दबा था, उसका पता चलना मुश्किल है। और खुद भी पता नहीं चलता हमारे मन के कोनों का कि कहां कौन सी बात छिपी होती है। वह किसी मौके पर निकल सकती है, अनगार्डेड, किसी क्षण में अगर पहरा न हो, अचानक वह निकल सकती है।
गांधी की जिंदगी को बहुत ठीक से समझ लेना जरूरी है। गांधी की जिंदगी
एक बड़ा असफल प्रयोग है--महान असफल प्रयोग। प्रयोग बहुत बड़ा है। उतनी ही बड़ी असफलता भी है। और समझ लेना इसलिए जरूरी है ताकि अहिंसा के संबंध में हमारी जो भ्रांत धारणा है वह मिट जाए।
अहिंसा आप साध नहीं सकते हैं। साधेगा कौन? हिंसक अहिंसा कैसे साधेगा? हिंसक कुछ भी करेगा, उसमें हिंसा मौजूद रहेगी। हिंसक मिट जाए, विलीन हो जाए, तो शायद जो शेष रहे वह अहिंसा हो सकती है।
मैंने सुना है, एक गांव में एक आदमी था बहुत क्रोधी, और इतना क्रोधी कि उसने अपनी पत्नी को धक्का देकर कुएं में मार डाला। फिर पछताया।
क्रोधी भी पछताते हैं। सच तो यह है कि क्रोधी ही पछताते हैं। जिसने क्रोध नहीं किया वह क्यों पछताएगा? और पछतावा जो है वह क्रोध के विपरीत नहीं है। पछतावा जो है वह क्रोध पर, जहां हम शुरू किए थे क्रोध, वहीं वापस लौट जाना है, उसी स्थान पर, ताकि फिर क्रोध किया जा सके। पछतावा तरकीब है क्रोध के वापस लौटने की। अगर मैंने आपको गाली दी है तो माफी मांग आया हूं, तो अब आप सम्हल जाना, अब मैं फिर तैयारी कर रहा हूं कि पुराने संबंधों पर लौट आओ, ताकि मैं फिर गाली दे सकूं। न मुझे पता है, न आपको पता है। लेकिन हम

वापस लौट रहे हैं उसी स्थिति में जहां गाली देने के पहले थे, ताकि फिर से गाली दे सकें। वहीं मैं ही लौट जाऊंगा वापस।
कोई बुद्धिमान आदमी कभी नहीं पछताता, सिवाय निर्बुद्धियों के। क्योंकि पछताने से कुछ मिटता ही नहीं है। पछताने से सिर्फ हम पुरानी स्थिति में लौट जाते हैं। फिर वही करते हैं, फिर पछताते हैं। फिर वही करते हैं, फिर पछताते हैं। जिंदगी भर वह रोग की तरह चक्कर खाता रहता है। पछताना भी क्रोध का हिस्सा है।
वह आदमी बहुत पछताया। पत्नी मर गई थी। इतना उसने सोचा भी न था। धक्का दिया था तब यह न सोचा था कि मार ही डालना है। अक्सर हम नहीं सोचते हैं कि क्या परिणाम होंगे। परिणाम हो जाते हैं तभी पता चलता है। बहुत दुखी हुआ। गांव में एक मुनि आए थे, उनके चरणों को जाकर पकड़ लिया। और उसने कहा कि मुझे बचाएं! मेरे जीवन का क्या होगा? मैं तो नरक का रास्ता तय कर रहा हूं। पत्नी को धक्का देकर मैंने मार डाला है। मैं कैसे क्रोध से मुक्त हो जाऊं?
तो साधु-संन्यासियों के पास और कोई रास्ता नहीं है, उनके पास एक ही रास्ता है। उन्होंने कहा, संसार छोड़ दो।
जैसे कि संसार छोड़ने से कोई क्रोध से मुक्त हो जाता हो। अब तक ऐसा हुआ नहीं है। संसार छोड़ने वाले लोग, अगर कभी जांच-पड़ताल की जाए, तो संसार में रहने वाले लोगों से अक्सर ज्यादा क्रोधी सिद्ध होंगे। क्योंकि यहां तो रोज-रोज क्रोध के निकल जाने के भी उपाय रहते हैं तो क्रोध इकट्ठा नहीं हो पाता, वहां मौके न होने की वजह से क्रोध इकट्ठा होता जाता है। इसलिए ऋषि- मुनियों की जो हम कथाएं पढ़ते हैं महाक्रोध की--दुर्वासा की, अभिशाप की--वे बड़ी ठीक हैं। ऋषि-मुनियों के लक्षण यही हैं। क्रोध को रोकेंगे, इकट्ठा हो जाएगा।
कहा मुनि ने कि तू त्यागी हो जा! छोड़ दे सब, संन्यासी हो जा! संसार में क्रोध से मुक्त कैसे होगा?
वह आदमी तो क्रोधी था। क्रोधी का मतलब यह है कि जो क्षण में भावाविष्ट होकर कुछ भी कर लेता है। अपनी पत्नी को धक्का दे सकता है। अपने को भी धक्का दे सकता है। उस आदमी ने वहीं कपड़े फेंक कर वह नंगा खड़ा हो गया। और उसने कहा कि मैंने छोड़ा संसार!
उस मुनि ने कहा कि तेरे जैसा संकल्पवान आदमी मैंने नहीं देखा। बहुत लोगों को मैंने समझाया कि छोड़ो। वे कहते हैं, कल छोड़ेंगे, परसों छोड़ेंगे। तू बड़ी महान आत्मा मालूम होता है!
मुनि भी न समझे कि महान आत्मा नहीं है। मुनि भी न समझे कि जो एक क्षण में पत्नी को कुएं में धक्का दे आया, वह एक क्षण में अपने को भी संन्यास में धक्का दे सकता है। क्रोध का ही रूप है वह भी। लेकिन इस क्रोध के रूप को पहचानना मुश्किल है, क्योंकि इसने बड़े सुंदर वस्त्र पहन लिए हैं।
वह आदमी संन्यासी हो गया। और मुनि के बहुत शिष्य थे, लेकिन उसके मुकाबले कोई भी न रहा। क्योंकि शिष्य अगर छाया में बैठते, तो वह सदा धूप में खड़ा होता। और शिष्य अगर दो बार भोजन करते, तो वह एक बार भोजन करता। और शिष्य अगर छह घंटे सोते, तो वह दो घंटे सोता। और शिष्य अगर बंधे हुए रास्ते पर चलते, तो वह नीचे कांटों के रास्ते पर चलता। उसकी ख्याति फैलने लगी। गुरु फीका पड़ने लगा। और उसकी तपश्चर्या की ख्याति फैलने लगी।
असल में जिसको हम तप कहते हैं, वह क्रोधी ही कर सकता है। कोई शांत चित्त आदमी उस तरह की नासमझियां नहीं कर सकता है। करने का कोई कारण नहीं है। वह आदमी था क्रोधी, लेकिन महातपस्वी हो गया। दूर-दूर तक उसकी ख्याति पहुंच गई। लोग दूर-दूर से उसके चरणों को नमस्कार करने आने लगे। और जितना आदर मिलने लगा, उतना ही उसका तप बढ़ने लगा।
तप के लिए आदर पक्का भोजन है। बिना आदर के तप नहीं बढ़ता। बढ़ ही नहीं सकता। क्योंकि तप बढ़ाने के लिए अहंकार चाहिए। और आदर अहंकार को मजबूत करता है, भरता है। कहता है, तुम हो महान। और एक आदमी को यह ख्याल पैदा करा दो कि तुम हो महान, फिर उससे कोई भी मूढ़ता करवाई जा सकती है। ऐसी कोई मूढ़ता ही नहीं है जो उससे न करवाई जा सके। अहंकार फिर कुछ भी करने को राजी हो जाता है। वह सिर के बल शीर्षासन कर सकता है। वह कुछ भी कर सकता है।

वह आदमी कुछ भी करने लगा। उसकी देह सूख कर कांटा हो गई। लेकिन अब वह किसी पर क्रोध न करता था। क्योंकि क्रोध की जो ऊर्जा थी, जो शक्ति थी, वह अपने पर ही निकली जा रही थी। अपने को ही इतना सता रहा था कि अब और किसी को सताने का कोई कारण न रह गया था। सताने की जो वृत्ति है, उसकी तृप्ति हो रही थी, अपने को ही सता कर हो रही थी। सब तरह के दुख अपने को दे रहा था।
फिर वह देश की राजधानी में पहुंचा। बचपन का उसका एक मित्र उस राजधानी में रहता था। उस मित्र ने सुना कि वह महाक्रोधी मेरा साथी महातपस्वी हो गया! वह भी हैरान हुआ। उसे बड़ा विरोध दिखाई पड़ा, कि इन दोनों बातों में बड़ा विरोध है। विरोध है नहीं। जो मन के सत्य को जानते हैं वे जानते हैं कि इसमें विरोध है नहीं। महाक्रोधी ही महातपस्वी हो सकता है। लेकिन उस मित्र को बड़ा चमत्कार मालूम पड़ा कि यह कैसे हुआ है!
वह दर्शन करने गया। तपस्वी का मंच धीरे-धीरे ऊंचा होता गया था, ऊंचा होता गया था। जैसे-जैसे तप बढ़ा, वैसे-वैसे मंच के पैर बड़े होते चले गए थे। तपस्वी बड़े मंच पर बैठा था। मित्र पहुंचा, तपस्वी ने पहचान तो लिया, बचपन का साथी था, लेकिन जब क्रोध मंच पर आसीन हो जाए तो मंच के नीचे के लोगों को कभी नहीं पहचानता है। कैसे पहचाने! उस पहचानने में बड़ी हीनता है। उसमें यह खबर है कि कभी हम भी तुम्हारे जैसे ही नीचे थे, साथी थे, मित्र थे। देख तो लिया मित्र को, लेकिन पहचाना नहीं। मित्र भी समझ गया कि देख तो लिया है, पहचान भी लिया है, लेकिन पहचान नहीं रहा है। मित्र पास जाकर बैठ गया और उस मित्र ने कहा, महाराज, मैं आपका नाम जानना चाहता हूं।
मुनि ने क्रोधी होने की वजह से, और क्रोध के विपरीत दीक्षा ली थी, उसको शांतिनाथ का नाम दे दिया था। मुनि शांतिनाथ उनको नाम मिल गया था। मुनि ने नीचे आग जलती हुई आंखों से देखा और कहा, अखबार नहीं पढ़ते हो? रेडियो नहीं सुनते हो? मेरा और नाम! नाम मेरा पता नहीं है! मेरा नाम है मुनि शांतिनाथ। लेकिन उनके कहने में ही पूरी अशांति मौजूद थी। उस मित्र ने कहा, कोई फर्क तो मालूम नहीं पड़ता, लेकिन फिर भी जगत में सब चमत्कार हो जाते हैं। मित्र थोड़ी देर चुप रहा। फिर आत्मज्ञान वगैरह की बातें चलती रहीं, जैसी कि मुनियों के पास चलती रहती हैं। फिर थोड़ी देर बाद, दो-चार मिनट बाद ही मित्र ने कहा, माफ करिए, मैं भूल गया, आपने क्या नाम बताया?
तब तो क्रोध की सीमा न रही। एक तो जानता है मुनि भलीभांति कि परिचित है, बचपन का साथी है। मुनि ने कहा, क्या कहा, सुना नहीं? बहरे हो? मेरा नाम है मुनि शांतिनाथ, ठीक से सुन लो!
फिर आत्मज्ञान की बात चलने लगी। फिर उस मित्र ने थोड़ी देर बाद कहा, माफ करिए, नाम तो मैं भूल ही गया!
तो फिर मुनि ने डंडा उठा लिया! और मुनि ने कहा, तुम ऐसे न मानोगे।
तो उसने कहा, अब पहचान गया, अब कोई कठिनाई नहीं है। मैं बड़ी दुविधा में
पड़ गया था कि तुम और कैसे हो गए! अब मेरी शंका दूर हुई, समाधान हो गया। अब मैं जाता हूं। तुम वही हो, कुछ फर्क नहीं हुआ।
क्रोध क्रोध को मिटाने की कोशिश से सिर्फ दब सकता है, मिट नहीं सकता। हिंसा हिंसा को मिटाने की कोशिश में सिर्फ आत्ममुख हो सकती है, मिट नहीं सकती। ब्रह्मचर्य काम को, सेक्स को दबाने की कोशिश से सिर्फ मानसिक व्यभिचार बन सकता है, और कुछ भी नहीं हो सकता। फिर क्या रास्ता है? रास्ता है। रास्ता यह है कि हम आमूल रूपांतरित हों, एक-एक हिस्से को बदलने की कोशिश न करें। और आमूल-रूपांतरण है समाधि। हम सिर्फ उसको जानने में लग जाएं जो हमारे भीतर गहरे से गहरे में छिपा है। हम इसकी अभी बहुत फिकर न करें कि हम कैसे कपड़े पहनते हैं, कैसा क्रोध करते हैं, कैसा भोजन करते हैं, क्या आचरण करते हैं। हम इस परिधि पर न भटकें। हम तो उसे खोजने में लग जाएं, वह जो भीतर छिपा है गहरे से गहरे में। क्रोधी के भी गहरे में जो बैठा है, हिंसक के भी गहरे में जो बैठा है, लोभी के भी गहरे में जो बैठा है, हम उसकी खोज करें। लोभी के भीतर भी परमात्मा उतना ही मौजूद है जितना निर्लोभी के भीतर; और क्रोधी के भीतर भी परमात्मा उतना ही मौजूद है जितना अक्रोधी के भीतर। परमात्मा की मौजूदगी में फर्क नहीं है। हम कैसे भी आदमी हों, हमारे भीतर वह परम ज्योति भीतर मौजूद है। हम उसकी झलक की चिंता करें, उसे हम पहचानने की चिंता करें।

समाधि उसे पहचानने का मार्ग है। और जिस दिन हम उस ज्योति को पहचान लेते हैं उसी दिन सब बदल जाता है। क्योंकि उस दिन के बाद हम वही आदमी नहीं हो सकते जो हम उसके पहले थे। क्यों? क्योंकि बड़े बुनियादी फर्क पड़ जाते हैं। एक आदमी छोटी-छोटी बात में क्रोधित होता है। क्यों? उसने कभी शांति नहीं जानी है। अगर वह एक बार शांति जान ले, तो क्रोध असंभव हो जाए।
बुद्ध एक घर में ठहरे हुए हैं, और एक आदमी ने उनके ऊपर आकर थूक दिया है। उन्होंने थूक साफ कर लिया और उस आदमी से कहा, और कुछ कहना है?
उस आदमी ने कहा, मैंने आपके ऊपर थूका है, आप क्रोधित न होंगे?
बुद्ध ने कहा, दस साल पहले आना था, तब मैं क्रोधित हुआ करता था। तुम बड़ी देर करके आए हो।
उसने कहा, अभी क्या बिगड़ा है! मैंने आपके ऊपर थूका, आप क्रोधित हो जाएं।
बुद्ध ने कहा, तुम्हारे थूक को तो मैंने चादर से पोंछ कर ही अलग कर दिया। मेरे भीतर जो अखंड शांति विराजमान हुई है, वह तुम्हारे थूकने से नहीं टूट सकती है। तुम्हारा थूकना वहां तक पहुंचता ही नहीं। तुम कुछ भी करो, तुम वहां तक नहीं पहुंचते। हां, जब मैं खुद ही वहां नहीं था और मैं भी घर के बाहर ही घूमता था, तब तुम्हारा थूक मेरे तक पहुंच जाता था। क्योंकि मैं भी घर के बाहर, तुम्हारा थूक भी घर के बाहर। अब जब से मैं भीतर गया हूं, तब से तुम्हारा थूक मुझे मीलों फासले पर पड़ा हुआ दिखाई पड़ता है, जिससे मेरा कोई लेना-देना नहीं। तुमने थूक कर नाहक मेहनत की। तुम गलत आदमी के पास आ गए। कोई ठीक आदमी खोजो।
वह आदमी बड़ी मुश्किल में पड़ गया होगा। लौट गया, रात भर सो न सका होगा। दूसरे दिन क्षमा मांगने आया। बुद्ध के पैर पर सिर रख कर रोने लगा और कहा, मुझे क्षमा कर दें।
बुद्ध ने कहा, क्षमा करूं तो मतलब होगा कि मैंने क्रोध भी किया था। क्रोध मैंने किया ही नहीं। सिर्फ दया खाई थी कि कैसे पागल हो! किसलिए थूक रहे हो! क्रोध तो किया नहीं, क्योंकि क्रोध करने का कोई कारण नहीं है, अब मैं समझ गया हूं कि दूसरे की भूल के लिए अपने को दंड देना पागलपन है। तुम थूको, मैं क्रोधित होकर आग में जलूं? मैं पागल नहीं हूं। मैं जिंदगी के गणित को समझ गया हूं। तुमने की है भूल, तुम जानो। मैं क्यों क्रोधित होऊं? तो बुद्ध बाद में कहते थे, क्रोध करना दूसरे की भूल के लिए अपने को दंड देना है।
लेकिन यह कब दिखाई पड़े? यह तब दिखाई पड़े जब भीतर की शांति का आकाश मिल जाए। तब फिर ऐसा नहीं है कि क्रोध छोड़ना पड़े। नहीं, क्रोध छूट जाता है। ऐसे ही जैसे किसी आदमी के हाथ में रंगीन कंकड़-पत्थरों का बोझ हो, मुट्ठी बांध कर पकड़ा हो उसने, और फिर हीरों की खदान मिल जाए, और उसे पता भी न चले कि मुट्ठी कब खाली हो गई, पत्थर नीचे गिर गए और हीरे उसने भर लिए। तो क्या हम कहेंगे कि तुम बड़े त्यागी हो, तुमने पत्थर छोड़ दिए! नहीं, त्यागी तो वह तब होता जब पत्थर पकड़े ही रहता और हीरों की फिकर न करता। जब हीरों की खदान मिल जाए तो पत्थर छूट जाते हैं, छोड़ने नहीं पड़ते।
जब भीतर की शांति का अनुभव हो जाए तो बाहर की अशांति के उपाय छूट जाते हैं, छोड़ने नहीं पड़ते। और जब भीतर एक आनंद की किरण फूट जाए तो सेक्स से, काम से मिलने वाला सुख दुख जैसा हो जाता है, उसका कोई अर्थ नहीं रह जाता। इसलिए कोई काम के सुख को तब तक नहीं छोड़ सकता, जब तक समाधि के सुख को न पा ले। और कोई हिंसा को तब तक नहीं छोड़ सकता, जब तक कि भीतर के अद्वैत को न पा ले। और बाहर की संपत्ति के मोह को कोई तब तक नहीं छोड़ सकता, जब तक भीतर की संपदा उपलब्ध न हो जाए।
तो मैं यह कह रहा हूं कि प्रक्रिया बिल्कुल उलटी है, जैसा हम सोचते हैं वैसी नहीं है। प्रक्रिया यह है कि पहले परमात्मा मिले, तो संसार छूटता है। संसार छोड़ कर कोई परमात्मा को नहीं पा सकता। संसार छोड़ कर सिर्फ मुसीबत में पड़ जाता है। परमात्मा मिलता नहीं और संसार भी छूट जाता है। उसकी हालत त्रिशंकु की हो जाती है, वह बीच में लटक जाता है। उसकी हालत बड़ी कठिनाई की हो जाती है। क्योंकि कंकड़-पत्थर भी छोड़ दिए उसने और हीरों की खदान का कोई पता नहीं है। हाथ खाली हो गए हैं। इसलिए वह भरे हाथों पर नाराज

होता रहता है। जिनके हाथ भरे हैं, कंकड़-पत्थर से ही सही, वह उनको गाली देता रहता है--कि नरक जाओगे! नरक का इंतजाम कर रहे हो! करो तुम भी हाथ खाली!
वह असल में यह कह रहा है कि कहीं हमीं तो परेशानी में नहीं पड़े हैं? और लोग भी पड़ जाएं तो कम से कम आश्वासन आ जाए कि हम कुछ गलती नहीं कर रहे हैं। कितने संन्यासियों ने मुझे एकांत में नहीं कहा है कि कई दफे ऐसा होता
है कि कहीं हमने भूल तो नहीं कर ली! कई बार ऐसा मन में सवाल उठता है कि जो हम छोड़ आए हैं वह छूट भी गया, लेकिन मिला तो कुछ भी नहीं!
संन्यासी जो क्रोध दिखला रहा है संसार के ऊपर और निंदा कर रहा है, उसका मनोवैज्ञानिक कारण है। उसका कारण यह है कि यह निंदा करके वह एक सुख ले रहा है कि कोई फिकर नहीं, अगर हाथ खाली हैं तो कोई हर्ज नहीं, स्वर्ग में हमारे हाथ भरे होंगे और तुम नरक जाओगे! तो वह संसारियों को गाली दे रहा है सुबह से सांझ तक। वह उनको निंदा कर रहा है। उनको कह रहा है कि तुम पापी हो। यह पापी और निंदा करने का जो रस है उसे, वह रस इसलिए है कि यही उसके पास रस है, अब और कोई रस उसके पास नहीं है।
जिस व्यक्ति को उस आनंद की छलक मिल गई हो, वह संसारी को पापी नहीं कहेगा। जिसको उस आनंद की झलक मिल गई हो, वह संसारी के प्रति निंदा से नहीं, अत्यंत करुणा से भर जाएगा। और सोचेगाः कैसे पागल हो कि हीरे की खदान पास है और तुम कंकड़-पत्थर पकड़े बैठे हो! लेकिन वह यह भी नहीं कहेगा कि कंकड़-पत्थर छोड़ दो। वह यह कहेगा, आओ हीरे की खदान पर आ जाओ! कंकड़-पत्थर तो छूट जाएंगे। कंकड़-पत्थर किसको पकड़ सकते हैं? असली धन न मिले तो नकली धन पकड़ना पड़ता है।
लेकिन अब तक हमें अनेक बार ऐसी भ्रांति होती है कि पहले यह छोड़ना पड़ेगा। उस भ्रांति का भी मौलिक कारण है। वह भी समझ लेना चाहिए। अगर महावीर को या बुद्ध को या कृष्ण को एक आत्मिक आनंद मिला है, अगर भीतर समाधि मिली है, अगर भीतर परमात्मा का मिलन हुआ है, तो उनका भीतर तो हमें दिखाई नहीं पड़ता, उनका अंतस्तल तो हमारी आंखों की पकड़ में नहीं आता, उनको भीतर क्या हुआ है, हमें पता नहीं। उनके बाहर क्या हुआ है, वही हमें दिखाई पड़ता है। उनकी घटना घटती है पहले भीतर, फिर बाहर; और हमें दिखाई पड़ता है बाहर पहले और फिर हम भीतर का अनुमान करते हैं।
उदाहरण के लिए, महावीर ने वस्त्र छोड़ दिए, वे नग्न हो गए। उन्होंने संपत्ति छोड़ दी, घर छोड़ दिया, वे अपरिग्रही हो गए। हमें पता नहीं कि उनके भीतर क्या हुआ है। हम देखें भी कैसे? जो अपने भीतर भी नहीं देख पाते, वे महावीर के भीतर कैसे देख पाएंगे? और जो अपने ही भीतर देख लेंगे, वे महावीर की पंचायत में क्यों पड़ेंगे कि उनके भीतर देखने जाएं? हम अपने ही भीतर नहीं झांक पाते, तो महावीर के भीतर झांकना तो असंभव है। फिर हमें महावीर का बाहर दिखाई पड़ता है। दिखाई पड़ता हैः महावीर नग्न खड़े हैं। दिखाई पड़ता हैः महावीर घर छोड़ दिए हैं। दिखाई पड़ता हैः महावीर धन छोड़ दिए हैं। दिखाई पड़ता हैः महावीर हिंसा नहीं करते हैं। दिखाई पड़ता हैः महावीर क्रोध नहीं करते हैं। यह सब हमें दिखाई पड़ता है। और फिर महावीर की आंखें दिखाई पड़ती हैं, और महावीर का चेहरा दिखाई पड़ता है, और उनकी अपरिसीम शांति मालूम होती है, और वे किसी अनूठे आनंद में नाचते और जीते हुए मालूम पड़ते हैं। यह सब दिखाई पड़ता है। तो हम सोचते हैं शायद हम भी कपड़ा छोड़ दें, घर छोड़ दें, धन छोड़ दें, ऐसी ही शांति हमें भी मिल जाए।
उलटी हो गई बात। वैसी शांति मिली, इसलिए वे घर छोड़ सके। हम घर छोड़ेंगे, सोचते हैं वैसी शांति मिल जाए। उलटा हो गया। एकदम उलटा हो गया। यह ऐसा हो गया जैसे गेहूं को बोएं हम तो भूसा पैदा हो जाता है, लेकिन कोई आदमी भूसे को बो दे तो फिर गेहूं पैदा नहीं हो जाता। गेहूं के साथ भूसा अपने आप पैदा होता है, लेकिन भूसे के साथ गेहूं पैदा नहीं होता। अगर आप भूसे को बो दें खेत में तो भूसा ही खराब हो जाएगा बोया हुआ, गेहूं नहीं आएगा। भूसा भी नहीं आएगा। कुछ भी नहीं आएगा।
तो महावीर का भूसा दिखाई पड़ता है, गेहूं दिखाई नहीं पड़ता। बाहर जो लिपटा हुआ है वह दिखाई पड़ता है। हम भी भूसा बोने में लग जाते हैं। ये जो हमारे तपस्वी, साधक जिनको हम कहते हैं, इनमें सौ में से निन्यानबे आदमी भूसा बोते रहते हैं। फिर बड़ी मुश्किल में पड़ जाते हैं। न गेहूं पैदा होता,

न भूसा पैदा होता। जो पास में था वह भी चला जाता है। तब वे सारी दुनिया पर क्रोध करने लगते हैं। और तब फिर अपने मन को समझाने के लिए वे कई उपाय खोज लेते हैं। कोई खोज लेता है कि शायद हमारी पात्रता नहीं है। अब भूसा बोएंगे, तो कौन सी पात्रता से गेहूं पैदा होगा? कौन है पात्र जो भूसा बो कर और गेहूं पैदा कर ले? लेकिन वे कहेंगे, हमारी पात्रता नहीं है, अधिकार नहीं है। वे कहेंगे, शायद पिछले जन्मों के कर्म बाधा डाल रहे हैं। यह तो जन्मों-जन्मों के कर्मों का मामला है। या वे और तरह के लोग होंगे तो कहेंगे, जब भगवान की कृपा होगी, उसकी बिना कृपा के कुछ भी नहीं होता। भगवान की कृपा से भी अभी तक भूसे से गेहूं पैदा नहीं हुआ। और आगे भी आशा नहीं है कि भगवान कुछ ऐसी कृपा करे। और जिस दिन ऐसी कृपा करेगा, तो दिमाग उसका खराब हो गया, समझ लेना पड़े।
नहीं, भूसे से गेहूं पैदा होता ही नहीं। वह नियम ही नहीं है। लेकिन भूसा दिखाई पड़ता है पहले, और इससे सारी भ्रांति हो जाती है। हम सभी, जो लोग सत्य की किरण को उपलब्ध होते हैं, उनके बाहर घूम आते हैं, चारों तरफ देख आते हैं।
अभी मैं एक गांव में मेहमान था। उस गांव का कलेक्टर आया, उसने कहा, एकांत में बात करनी है। कलेक्टर, पढ़ा-लिखा आदमी! अंदर आया, दरवाजा अटका दिया, मुझसे बोला कि आपसे दो-चार-पांच सवाल पूछने हैं। पहला तो यह कि अगर मैं भी आप जैसी चादर ओढ़ने लगूं तो कुछ शांति मिलेगी?
अब एक पढ़ा-लिखा आदमी! एक गांव का ग्रामीण पूछे तो क्षमा योग्य। एक कलेक्टर पूछे कि ऐसे कपड़े मैं पहन लूं तो शांति मिलेगी?
मैंने कहा, थोड़ी-बहुत शांति होगी तो वह भी खो जाएगी। क्योंकि इन कपड़ों में तुम मुसीबत में पड़ जाओगे। पर इन कपड़ों से कोई संबंध ही नहीं है।
तो उसने कहा, अपनी दिनचर्या बताइए। कब आप उठते हैं? तो मैं भी वैसी दिनचर्या बना लूं।
अब कब उठने से क्या संबंध है! जो नौ बजे सुबह उठेगा उसको ब्रह्मज्ञान नहीं होगा? जो पांच बजे सुबह उठेगा उसी को ब्रह्मज्ञान होगा? बचकानी बातें हैं। नौ बजे उठने से अगर ब्रह्मज्ञान में बाधा पड़ती हो, तो ब्रह्मज्ञान बहुत कमजोर चीज है। और बहुत सस्ती चीज है, क्योंकि जो पांच बजे उठता है उसे मिल जाता है, जो नौ बजे उठता है उसे नहीं मिलता।
नहीं, उन्होंने कहा कि आप मजाक मत करिए।
मैंने कहा, मैं मजाक नहीं कर रहा हूं।
आप क्या भोजन में लेते हैं, मुझे सब नोट करवा दीजिए।
अब भोजन से क्या संबंध है! क्या खाते हैं, क्या पीते हैं, क्या पहनते हैं, कैसे उठते हैं, इसी को हम देख पाते हैं। इसी को देख कर हम पकड़ लेते हैं। और फिर उस ढांचे को अपने ऊपर बिठालते हैं। उस ढांचे को हम कहते हैं यम, नियम, व्रत, और न मालूम क्या-क्या हम कहते हैं। उस ढांचे को हम बिठाल लेते हैं अपने ऊपर। और फिर उस ढांचे में हम फंस जाते हैं। क्योंकि जिनसे हमने ढांचा सीखा उनके लिए वह कैद न थी, उनके भीतर से कुछ आया था और बाहर फैल गया था। और हमारे भीतर से कुछ भी नहीं आया है, बाहर से हम ले आए हैं और एक ढांचा बना लिया है। अब हम फंस गए उस ढांचे में।
इसलिए आमतौर से व्रत-उपवास करने वाला व्यक्ति एकदम गुलाम वृत्ति का मालूम पड़ेगा। एकदम स्लेव मेंटलिटी का होगा, दिमागी रूप से बिल्कुल गुलाम होगा। उसके पास बुद्धि जैसी चीज भी नहीं होगी। उसके पास कोई चमक भी न होगी प्रतिभा की। वह एकदम थर्ड रेट होगा। हो ही जाएगा। क्योंकि वह जो काम कर रहा है वह उसे तृतीय श्रेणी में डाल देता है। वह ढांचा बना रहा है। और वह ढांचे से सोच रहा है सब हो जाएगा।
इसी तरह दुनिया के सारे व्रत, सारे रिचुअल, सारे क्रियाकांड पैदा हुए हैं।
मैंने सुना है, एक घर में ऐसा हुआ। रात एक पति घर वापस लौटा, थका था, बहुत दूर से यात्रा करके आया था। बिस्तर पर लेट गया, उसने अपनी पत्नी से कहा, बहुत प्यास लगी है, पानी ले आ। वह पत्नी पानी लेने गई, लेकर लौटी, तब तक पति की नींद लग गई थी। तो उस पत्नी ने सोचा कि पता नहीं, प्यास तो बहुत लगी थी, थके भी हैं, न मालूम कब नींद खुले, और मेरी नींद लगी हो तो शायद फिर वे

मुझे कष्ट न दें। तो वह वहीं खड़ी रही, कि जब नींद खुले, मैं पानी पिला कर सो जाऊं। नींद सुबह तक न खुली। वह रात भर खड़ी रही। सुबह जब पति ने आंख खोली, तो उसने देखा। उसने कहा, पागल, तू यह क्या कर रही है? तू यहां किसलिए खड़ी है? वह तो भूल भी गया था।
उसने कहा, आप भूल गए। याद किया था पानी के लिए, मैं लेने गई तब तक आप सो गए। फिर मैंने सोचा, पता नहीं कब नींद खुले, कब पानी की जरूरत पड़ जाए। तो मैं खड़ी रही। जब जरूरत हो, पानी देकर, फिर सो जाऊं। फिर नींद नहीं खुली, तो मैं रुकी रही।
पति ने कहा, तू कैसी पागल है!
लेकिन यह बात गांव भर में फैल गई। राजा के कानों तक पहुंच गई। राजा सांझ को मिलने आया। और उसने कहा, उस स्त्री के मैं दर्शन करना चाहता हूं। वह जो रात भर खड़ी रही। क्योंकि ऐसी स्त्रियां तो हैं जो पति को रात भर खड़ा रखें, लेकिन ऐसी स्त्रियां कहां हैं जो रात भर खड़ी रहें! यह स्त्री कौन है, मैं दर्शन करने आया हूं। और जब राजा दर्शन करने आया तो पूरा गांव आ गया। किसी ने फूल चढ़ाए, किसी ने भेंट दी, राजा एक बहुमूल्य हीरों का हार दे गया। और उसने कहा कि अगर ऐसा भी प्रेम अभी है, तो कुछ आशा बंधती है।
पड़ोस की स्त्रियों को आग लग गई। पड़ोस की स्त्रियों को काम ही कुछ नहीं
है सिवाय आग लग जाने के। पड़ोस की स्त्रियों ने कहा, इसमें बात ही क्या बड़ी है! पड़ोस की एक स्त्री ने अपने पति से कहा, इसमें है ही क्या, अरे एक रात क्या, हम दस रात खड़े रहें! और आज ध्यान रखो, सांझ जब आओ तो जरा देर से आना, थके-मांदे आना। आते ही से बिस्तर पर लेट जाना और एकदम से कहना, बहुत प्यास लगी है। मैं जब पानी लेकर आऊं तो ध्यान रखें, आंख बंद करके सो जाना। फिर मैं रात भर खड़ी रहूंगी। फिर सुबह अफवाह फैला देंगे। और जब इतनी सी बात पर इतना बहुमूल्य हार मिल गया, तो हम क्यों चूकें!
पति जैसे साधारणतः आज्ञाकारी होते हैं, वह भी पति आज्ञाकारी था। उसने आज्ञा मानी। सांझ को थका-मांदा लौटा। थका-मांदा तो नहीं था, लेकिन थका- मांदा प्रकट किया। बाहर से ऐसा आचरण किया, एकदम घर आकर सांस लेने लगा जोर से, बिस्तर पर लेट गया। कहा, बड़े जोर की प्यास लगी है। प्यास का कोई पता ही न था। पत्नी ने कहा, रुको, मैं अभी पानी ले आती हूं। पत्नी भीतर गई, पानी भर कर लाई। अभी कोई नींद पति को आ नहीं रही थी, लेकिन आंख बंद करके सो जाना पड़ा। रिचुअल, क्रियाकांड जिसको कहते हैं। आंख बंद करके पति सो गया। पत्नी थोड़ी देर खड़ी रही, फिर उसने कहा कि रात भर देखने वाला भी कौन है! सुबह-सुबह फिर खड़ी हो जाऊंगी। अफवाह ही तो उड़ानी है। और ठीक ही सोचा। रिचुअल का दिमाग जो है, वह तो चूंकि चालाकी कर रहा है, धोखा दे रहा है, वह यह सोचेगा, यह बिल्कुल ही उसी तर्कसरणी का हिस्सा है। ठीक ही है, जब इतना धोखा दिया जा रहा है कि प्यास न लगी हो तो प्यास लग आए; थका न हो आदमी, थका हो जाए; नींद न आई हो, नींद लग जाए; तो उस पत्नी ने सोचा, जब इतना ही सब चल रहा है, तो मैं काहे के लिए रात भर खड़ी रहूं! गिलास रख कर वह भी सो गई। सुबह, उसने कहा, जल्दी उठ कर वापस खड़े हो जाएंगे। मोहल्ले में खबर कर देंगे।
अब पति, सुबह हो गई है, पति बार-बार आंख खोल कर देखता है, पत्नी वहां नहीं है, वह बेचारा वापस आंख बंद कर लेता है। क्योंकि नियम, यम-नियम का वह पालन कर रहा है। फिर आखिर बड़ी देर होने लगी, धूप उठने लगी ऊपर, मोहल्ले के सारे लोग उठ गए। उसने चिल्ला कर कहा, क्या कर रही है, जल्दी आकर खड़ी हो, नहीं तो अफवाह कैसे उड़ेगी!
अफवाह भी उन्होंने उड़ा दी। लेकिन सम्राट नहीं आया। गांव से कोई नहीं आया। तब तो वह स्त्री बहुत क्रोध से भर गई। सांझ वह सम्राट के द्वार पर पहुंच गई। और उसने कहा, यह अन्याय हो रहा है। जब एक का ऐसा सम्मान हो, और वही काम हम भी करें, हमारा सम्मान न हो! आप कैसे सम्राट हैं?
तो उस सम्राट ने कहा, पागल, उसने सम्मान के लिए नहीं किया था। हो गया था। तूने सम्मान के लिए ही किया है। इसलिए सब झूठा हो गया है। और वह मेरे द्वार नहीं आई थी, मैं उसके द्वार पर गया था। तू मेरे ही द्वार आ गई है! महावीर को, बुद्ध को, कृष्ण को, किसी को, क्राइस्ट को, हुआ है, वे समाधि में डूबे हैं, अहिंसा हुई है, प्रेम हुआ है, करुणा हुई है। यह उनका प्रयास नहीं है। और हम? हम साध रहे हैं। अहिंसा साध रहे हैं। बैठे हैं सुबह से

चरखा कात रहे हैं, अहिंसा साध रहे हैं। अब सधी हुई अहिंसा बड़ी खतरनाक है। क्योंकि सधी हुई अहिंसा का मतलब--झूठी अहिंसा। कल्टीवेट नहीं किया जा सकता कुछ भी। जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है वह हैपनिंग की तरह होता है, उसे आप साध नहीं सकते।
तो यह जो मैंने कहा, मैं नहीं कहता हूं कि आप पहले अहिंसक हों, फिर समाधि में जा सकते हैं। मैं नहीं कहता कि पहले ब्रह्मचर्य साधें, फिर समाधि सधेगी। हां, इतना मैं जरूर कहता हूं कि समाधि में डूबें। और समाधि कोई साधने की बात नहीं है। अपने भीतर निरंतर जो मौजूद है, उसकी तरफ आंख ही उठानी है। उसकी तरफ आंख भर उठ जाए, वह मौजूद ही है। वह हमारी संपदा ही है। उसकी तरफ आंख उठ जाए तो आप पाएंगे कि जीवन अहिंसक हो गया है; आप पाएंगे कि ब्रह्मचर्य फलित हुआ है; आप पाएंगे कि अपरिग्रह आ गया है। इनको लाना नहीं पड़ेगा।
और जब ब्रह्मचर्य आता है तब सेक्स से बिल्कुल अनकंटेमिनेटेड होता है।
और जब लाया जाता है तब सेक्स उसमें पूरी तरह रग-रग में भरा होता है। जब ब्रह्मचर्य आता है तो उस ब्रह्मचर्य को सेक्स का पता ही नहीं रह जाता कि सेक्स भी कुछ है। क्योंकि उससे कोई लेना-देना ही नहीं है। और जब अहिंसा आती है तो उसमें हिंसा का कोई रत्ती हिस्सा भी नहीं रह जाता। और जब प्रेम आता है तो उसमें घृणा की कोई रूपरेखा नहीं रह जाती। तभी तो वह निर्दोष फलित होता है। समाधि उसका बीज है, आधार है। फूल खिलेंगे।
इसलिए मैं व्रत, नियम के पक्ष में नहीं हूं। ठीक-ठीक विपक्ष में हूं, विरोध में हूं। भूल कर व्रत मत साधना, अन्यथा जीवन में जो सहज आ सकता है वह कभी नहीं आएगा। भूल कर क्रियाकांड को ऊपर से मत थोप लेना, अन्यथा भीतर का जो आविर्भाव है वह सदा के लिए प्रतीक्षा करता रह जाएगा। अहिंसक मत होना, अगर अहिंसक होना हो। और ब्रह्मचारी मत बनना, अगर ब्रह्मचर्य को आने देना हो। अपनी चेष्टा से मत थोपना। हां, एक ही बात जो मुझे लगती है कि करने जैसी है, और वह है कि मैं कौन हूं, इसे मैं जान लूं। और इसे करने के लिए कुछ कहीं से लाना नहीं है। यह मैं हूं ही।
एक आदमी पिछले महायुद्ध में गिर पड़ा, चोट खा गया। चोट खाने से उसकी स्मृति खो गई और उसे याद न रहा कि मैं कौन हूं। लेकिन उसका नंबर तो था। नंबर मिल जाता अगर तो रजिस्टर से पता चल जाता कि यह आदमी कौन है। लेकिन नंबर भी कहीं युद्ध के मैदान पर गिर गया। और तब बड़ी मुश्किल हो गई कि यह है कौन? और वह तो बताने में असमर्थ हो गया। उससे जब कोई पूछता, तुम कौन हो? तो वह खुद ही पूछता कि यही तो मैं पूछना चाहता हूं कि मैं कौन हूं?
युद्ध खतम हो गया, उस सैनिक को रिटायरमेंट मिल गया, क्योंकि उसकी स्मृति नहीं लौटी। लेकिन उसने कहा, मैं जाऊं कहां? आप मुझे मुक्त कर रहे हैं सेवा से, बड़ी कृपा, लेकिन मैं जाऊं कहां? मैं हूं कौन? मेरी पत्नी कहां? मेरे बेटे कहां? मेरे पिता कहां? मेरा गांव कहां है? मेरा घर कहां है? तो सारे अधिकारी इंग्लैंड के मुश्किल में पड़ गए कि इसे भेजें कहां? यह बात तो ठीक ही है। यह आदमी जाए कहां? इसको रखना भी संभव नहीं रहा, क्योंकि इसको रख कर भी क्या करें। इसकी सारी स्मृति खो गई है। फिर किसी ने सलाह दी कि इसे, कोई बड़ा मुल्क तो है नहीं इंग्लैंड, इसे ट्रेन में घुमाया जाए, हर स्टेशन पर इसको उतारा जाए, शायद कोई स्टेशन इसकी अपनी हो और ख्याल में आ जाए।
उसे ले गए। उसे जगह-जगह उतार कर खड़ा कर देते। वह देखता, उसको कुछ याद न आता। लेकिन एक गांव के, छोटे से गांव पर, ट्रेन रुकी भी नहीं, और उसने तख्ती देखी एक गांव की, और उसने कहा कि अरे, यह नाम पहचाना हुआ मालूम पड़ता है! चेन खींच कर उसे उतारा। वह तो दौड़ना शुरू कर दिया। वह तो अंदर प्लेटफार्म के भीतर गया। वेटिंग रूम में गया। और उसने कहा, मेरा गांव! और वह तो भागा। और जो उसको लाए थे साथ, वे पीछे भागे। उससे कहा भी कि रुको भी तो! पर वह रुकने वाला नहीं था। वह तो भागा, वह गली-कूचों में चक्कर लगाते हुए--वह उसका गांव था जहां वह पैदा हुआ था, स्मृति वापस लौट आई थी--वह अपने घर के सामने जाकर खड़ा हो गया। उसने तख्ती पढ़ी और उसने कहा, अरे, यह तो मेरा नाम है! वह भीतर चला गया। वह अपनी मां के पैरों लग गया। वह अपनी पत्नी को गले लगा लिया।

उसके मित्र जो पीछे उसके आए थे, वे कहने लगे, यही है न? उसने कहा, अब पूछो ही मत, अब बात ही मत करो। अब आप जाओ, यह बात खतम हो गई।
क्या हुआ क्या था इस आदमी को? इस आदमी की स्मृति खो गई थी। स्मृति इसकी लौट आई। जिसे मैं समाधि कह रहा हूं, वह आपको बहुत से स्टेशनों पर घुमाना है--अंधेरे में, अकेले में, मरने में--ये स्टेशंस हैं जहां आपको घुमाने के लिए कह रहा हूं। यहां घूमें, शायद कहीं वह तख्ती दिखाई पड़ जाए--यह रहा मेरा घर! और आप भीतर चले जाएं और उससे मिलना हो जाए जो निरंतर वहां प्रतीक्षा कर रहा है। एक बार यह हो जाए तो आप दूसरे आदमी वापस लौटेंगे।
समाधिस्थ व्यक्ति का लक्षण है अहिंसा, पहचान है।
समाधिस्थ व्यक्ति का लक्षण है ब्रह्मचर्य, पहचान है। साधना नहीं है।
समाधिस्थ व्यक्ति का लक्षण है अपरिग्रह। साधना नहीं है।

एक और प्रश्न। एक मित्र ने पूछा हैः समाधि को साधें ही क्यों? क्या लाभ है? क्या मिलेगा? क्या फायदा है?

लाभ और फायदे की अगर दृष्टि हो, तो फिर भीतर जाया ही नहीं जा सकता है। लाभ की दृष्टि निरंतर बाहर ले जाती है। क्या मिलेगा, अगर इसकी दृष्टि हो तो भीतर जाना ही मत। क्योंकि वहां जो मिलेगा वह मिला ही हुआ है। वहां कुछ नया नहीं मिलेगा।
बुद्ध को हुआ ज्ञान, लोगों ने पूछा, क्या मिला? तो बुद्ध ने कहा, मिला कुछ भी नहीं, जो मिला ही हुआ था उसका पता चल गया है। मिला ही हुआ था, जिसे कभी खोया ही नहीं था, वही मिल गया है।
तो जो लाभ के हिसाब में है उसे तो वह मिलना चाहिए जो कभी न मिला हो। तो समाधि इस अर्थ में प्रॉफिटेबल नहीं है, लाभदायक नहीं है। वहां वही मिलेगा जो मिला ही हुआ है।
लक्ष्य क्या है? कुछ, जीवन में जो महत्वपूर्ण है, वह सदा लक्ष्यहीन होता है, परपजलेस होता है। जब किसी को प्रेम किया है, तो पूछा थाः प्रेम का लक्ष्य क्या है? नहीं, तब आप कहेंगे, प्रेम अपना ही लक्ष्य है। जब आप आनंदित हो उठते हैं, तब पूछा हैः आनंद का लक्ष्य क्या है? किसलिए आनंदित होऊं? नहीं, तब आप बस आनंदित हो जाते हैं और कभी नहीं पूछते कि आनंद का लक्ष्य क्या है। कभी नहीं पूछते कि मैं पहले पता लगा लूं कि आनंदित होने से लाभ क्या होगा, तब मैं आनंदित होऊंगा। बस आनंदित होने के लिए सदा तैयार हैं। और आनंद का लक्ष्य क्या है? आनंद लक्ष्यहीन है। प्रेम भी लक्ष्यहीन है। और परमात्मा तो बिल्कुल ही लक्ष्यशून्य है। जिसे कहीं नहीं जाना है वही परमात्मा है। जिसे कहीं नहीं पहुंचना है वही परमात्मा है। जो वहां सदा पहुंचा ही हुआ है जहां पहुंचने की आकांक्षा हो, वही परमात्मा है। समाधि उसका द्वार है।
तो अगर अभी लक्ष्य की दौड़ हो, तो थोड़े दिन लक्ष्य में ही दौड़ लेना, समाधि की फिकर मत करना। क्यों? क्योंकि लक्ष्य में दौड़ कर पता चलता है कि सब लक्ष्य व्यर्थ हैं। अगर अभी लाभ की इच्छा हो तो लाभ ही कर लेना, जल्दी कोई भी नहीं है। और परमात्मा अंतहीन प्रतीक्षा करता है कि कोई जल्दी नहीं है। और थोड़ा खेलो, और थोड़ा खेलो, और इस जन्म खेलो, जितनी देर खेलना हो खेलते रहो, कोई जल्दी नहीं है। वहां कोई जल्दी नहीं है, क्योंकि समय की वहां कोई कमी नहीं है। कोई लिमिटेड टाइम हो, तो परमात्मा कहे कि पांच बज गए, अब सांझ हुई जाती है, अब आ जाओ। वहां न सांझ होती है, न पांच बजते हैं। अंतहीन इटरनिटी जहां है, समय शून्य है जहां, वहां कैसी जल्दी? वहां कैसी हड़बड़? वह प्रतीक्षा करता है, वह प्रतीक्षा करता है।
सुनी है मैंने एक कहानी। एक ऋषि बहुत खोज करता है ईश्वर की। और खोज इसलिए करता है कि ईश्वर से मिल कर उसे पूछना है कि यह क्या है राज इस सारे संसार का? फिर एक दिन गरीब परमात्मा उसे मिल जाता है। बड़ी मुश्किल से मिलता है।
गरीब इसलिए कह रहा हूं कि वह बचता रहता है ऐसे आदमी से। क्योंकि आदमी मिल जाए तो झंझट खड़ी करता है। फौरन शंका-समाधान शुरू कर देता है कि यह शंका है, यह शंका है। वह इसी शंकाओं से बच कर तो छिपा हुआ है सब तरफ। कि जब

तुम्हारी सब शंकाएं खतम हो जाएं तब तुम आना कृपा करके, उसके पहले मत आना। लक्ष्य क्या है जीवन का? क्यों बनाया जीवन? जब तुम्हारा कोई लक्ष्य न रह जाए तब आ जाना, तब झंझट न होगी, चुपचाप बैठ सकेंगे, बातचीत न होगी।
वह आदमी, ऋषि पहुंच गया है। उसने जाकर परमात्मा को पकड़ लिया और उसने कहा कि इस संसार का क्या रहस्य है? यह क्या चल रहा है? यह क्या खेल हो रहा है? यह मेरी कुछ समझ में नहीं आता।
उस परमात्मा ने कहा, मुझे बड़े जोर की प्यास लगी है। देखते नहीं दुपहरी
है और धूप तेज पड़ रही है! एक गिलास पानी कहीं से ले आओ, फिर पीछे मैं तुम्हें बताऊं।
वह ऋषि पानी लेने गया। वह एक झोपड़े पर पहुंचा है, ब्राह्मण का घर है, पिता बाहर गया है, लड़की है जवान, वह पानी लेकर बाहर आई है, ऋषि मोहित हो गए। अब ऋषि सदा से ही मोहित होते रहे हैं। क्योंकि ऋषि जिससे लड़ते हैं उसका भीतर राग बना रहता है। अब स्त्री से ही लड़ते-लड़ते वे ऋषि हुए होंगे। अब जब एक स्त्री आ गई है तो वह लड़ाई क्षण भर में खो गई है, और उन्होंने तो निवेदन कर दिया है कि मैं विवाह करना चाहता हूं। पिता आया है, पिता ने देखा कि ऐसा योग्य, स्वस्थ, सुंदर, साधुपुरुष मिल गया है, इससे अच्छा क्या है! विवाह हो गया। लेकिन वह गरीब परमात्मा उधर प्यासा बैठा है, वह वे ऋषि भूल गए। विवाह हो गया; उनके बच्चे हो गए हैं, और बूढ़े हो गए हैं, और बच्चों की शादियां हो रही हैं, और बच्चों के बच्चे हो गए हैं, और बहुत समय व्यतीत हो गया। और उधर वह गरीब परमात्मा राह देख रहा है कि वे पानी लेकर आते होंगे।
फिर जब बूढ़े हो गए हैं, तो बहुत जोर की बाढ़ आई है, वर्षा है और घनघोर पानी गिरा है। बाढ़ आ गई है, सारा गांव डूब रहा है। तो ऋषि अपनी पत्नी, अपने बच्चों और उनके बच्चों को सम्हाल कर बाढ़ से बचने की कोशिश करते हैं। एक को बचाते हैं, दूसरा बह जाता है; एक बच्चे को बचाते हैं, बच्ची छूट जाती है; बच्ची को बचाने जाते हैं, पत्नी छूट जाती है। उस बाढ़ में सभी बह जाते हैं, ऋषि भर किसी तरह तट पर थके-मांदे गिर पड़ते हैं, बेहोश हो जाते हैं। आंख खुलती है तो परमात्मा खड़ा है। वह कह रहा है, पानी नहीं लाए? बड़ी देर लगा दी। पानी कहां है? मैं प्यासा बैठा हुआ हूं।
तो वे ऋषि बहुत घबड़ा जाते हैं। वे कहते हैं, पानी कहां है! अभी तो बाढ़
ही बाढ़ थी, पानी ही पानी था! मेरी पत्नी भी खो गई, मेरे बच्चे भी खो गए।
पर वे देखते हैं कि सूरज वहीं खड़ा है जहां छोड़ गए थे, जब पानी लेने गए थे। धूप उतनी ही तेज है, वही जगह है। तो वे कहते हैं, बड़ी मुश्किल में पड़ गया। लेकिन इतनी देर तो बहुत कुछ हो गया। इतनी देर तो मेरे बच्चे हो गए थे, बच्चों के बच्चे हो गए थे, उनकी शादी-विवाह का इंतजाम करना था। और बाढ़ आ गई थी, और सब गड़बड़ हो गया। और आप अभी यहीं बैठे हैं! और आप कह रहे हैं पानी? अभी तक आप पानी नहीं खोज पाए?
परमात्मा ने कहा, मैं तुम्हारी प्रतीक्षा ही कर रहा हूं। मैं सदा प्रतीक्षा करता रहता हूं।
वह ऋषि कहता है, लेकिन इतना हो गया सब!
तो वे परमात्मा उससे कहते हैं कि वह सब समय के भीतर हो जाता है। लेकिन समय के बाहर कुछ पता नहीं चलता। समय के बाहर कुछ पत्ता भी नहीं हिलता है। वहां अनंत प्रतीक्षा है।
तो जल्दी क्या है? अभी आप जाएं पानी खोजने, जाएं किसी की कुटी पर, करें विवाह, बच्चे आने दें, शादी-विवाह करें, सब होने दें। जब बाढ़ आ जाए... और बाढ़ आती है, जब सब डूब जाता है। बाढ़ जरूर आती है। जब जिंदगी में जो हमने कमाया, वह सब डूबता लगता है। जिंदगी में जो चाहा, खोता लगता है। जिंदगी में जो बचाया, वह जाता लगता है। बाढ़ आ जाती है। और जब बाढ़ आती है और जब सब बह जाता है, और आखिर में आप ही बचते हैं, और सब बह जाता है, सब! और जब तट पर खड़े रह जाते हैं और आंख खोलते हैं, तो वह निकट है सदा, वह प्रतीक्षा कर रहा है। वह कहेगा, ले आए पानी?
मैं नहीं कहता हूं कि आप समाधि के लिए कोई लोभ से जाएं। लोभ से कोई समाधि में नहीं जा सकता। लाभ की दृष्टि से कोई नहीं जा सकता। समाधि को लक्ष्य नहीं बनाया जा सकता। समाधि में जाने की आतुरता उनमें पैदा होती है जिन्हें सब लक्ष्य व्यर्थ दिखाई पड़ने लगते हैं। जिन्हें सब लाभ और

हानियां बराबर होने लगती हैं, जिन्हें जिंदगी में हार और जीत समान दिखाई पड़ने लगती हैं, जिन्हें सुख और दुख में कोई फर्क नहीं रह जाता, जिन्हें जन्म और मृत्यु एक सी दिखाई पड़ने लगती है।
तो जाएं जिंदगी में, जल्दी नहीं है कोई। खोजें, खोजें, और परेशान हो जाएं और थक जाएं। और जिस दिन थकेंगे, बाढ़ आ जाएगी, लौट आएंगे उस किनारे पर। लेकिन जो आ गए हों उस किनारे पर, वे समाधि की खोज में लग जाएं। समाधि का कोई लक्ष्य नहीं है। समाधि से कुछ मिलता नहीं, खो बहुत कुछ जाता है। खुद ही खो जाते हैं।
लेकिन तब हमारा मन कहेगाः फिर, फिर हम किसलिए खोजें?
मत खोजें! खोजें जहां ठीक लगता है वहां! लेकिन कहीं भी खोजें, सब खोज व्यर्थ हो जाएगी! अंततः एक ही खोज सार्थक हो सकती है, और वह खोज अपनी खोज है। लेकिन वह लाभ-हानि के बाहर है। किसी चीज को तो बाजार के बाहर रहने दें। किसी चीज को तो कम से कम बाजार के मूल्यों के बाहर रखें। किसी चीज को तो कम से कम कमोडिटी न बनाएं, जो बाजार में बिकती हो, हानि होता हो और लाभ होता हो। कम से कम अपने को तो बाजार में सामान की तरह खड़ा न करें। एक चीज को तो छोड़ दें बाजार के बाहर। जब बाजार से थक जाएं, तब आ जाना। और थकने का उपाय यह है कि बाजार में जरा जोर से दौड़ लें; जितनी तेजी हो सके, ताकत से दौड़ लें, थक जाएं।
संसार से जो थक जाते हैं, संसार की व्यर्थता जिन्हें दिखाई पड़ जाती है, संसार जिनके लिए कोई अर्थ नहीं रख पाता, वे फिर भीतर की यात्रा पर लौटते हैं। वे ही केवल भीतर की यात्रा पर लौटते हैं। लेकिन तब सवाल नहीं उठता कि लाभ क्या है? क्योंकि सब लाभ वे देख चुके। कोई लाभ लाभ सिद्ध न हुआ। तब वे यह नहीं पूछते हैं कि लक्ष्य क्या है? तब सब लक्ष्य खोज चुके और कोई लक्ष्य मिला नहीं। मिला भी, तो मिल कर भी पाया कि उसमें कुछ है नहीं। तब वे यह नहीं पूछते कि फायदा क्या है? पाएंगे क्या? वे कुछ पूछते ही नहीं। वे कहते हैं, अब तो हम उस जगह होना चाहते हैं जहां कोई लक्ष्य न हो, लाभ न हो, हानि न हो, सुख न हो, दुख न हो, पाना न हो, खोना न हो, आना न हो, जाना न हो, अब हम उस जगह होना चाहते हैं जहां कुछ भी न हो।
और आश्चर्य तो यह है कि जहां कुछ भी नहीं है वहीं सब कुछ का वास है। लेकिन वह तो पहुंच कर पता चलेगा। वह किसी के कहने से नहीं। क्योंकि किसी के कहने से अगर पता चला, तो आप उसको भी एक लक्ष्य बना लेंगेः अच्छा तो फिर ठीक है, सब कुछ को पाने के लिए चलते हैं।

एक अंतिम बातः एक मित्र ने पूछा है कि आप जिसको समाधि कहते हैं वह तो शून्य है। वह शून्य समाधि कैसे बनेगा? उस शून्य में परमात्मा कैसे आएगा?

आप इसकी फिकर न करें। आप सिर्फ शून्य हो जाएं। वह आ जाता है। आप शून्य नहीं हैं, तब तक वह नहीं आ सकता है। जगह चाहिए, स्पेस चाहिए, भीतर जगह चाहिए उसके होने के लिए। और उसके होने के लिए पूरी जगह चाहिए। इंच भर भी भीतर अगर घिरा हुआ है, तो वह न आएगा। उसके लिए पूरी जगह चाहिए। जगह ही जगह चाहिए। खालीपन चाहिए।
आप खाली हो जाएं, इतना आपका काम। भरेगा वह, वह उसका काम। हमारा काम इतना है कि हम घर का द्वार खोल दें। सूरज को गठरी बांध कर भीतर थोड़े ही लाया जा सकता है। द्वार खोल दें, फिर सूरज निकलेगा, आ जाएगा, घर में उसकी किरणें भर जाएंगी। सिर्फ द्वार खुला हो। ऐसा न हो कि सूरज आए और द्वार बंद हो, तो भी सूरज भीतर न आएगा। बड़े शिष्ट हैं--सूरज, प्रकाश, परमात्मा--बड़ा शिष्टाचार निभाते हैं। अगर जरा ही दरवाजा अटका है, तो वे बाहर ही खड़े रहेंगे। वे खटखटाएंगे तक न। वे न कहेंगे कि खोलो। वे कहेंगे, जब खोलोगे तब आ जाएंगे। अभी खड़े हैं, प्रतीक्षा करते रहेंगे।
जिस दिन हम अपने को शून्य कर लेते हैं उस दिन हम पूर्ण को उतारने का स्थान बना लेते हैं। वर्षा होती है पहाड़ों पर भी, झीलों पर भी। पहाड़ खाली रह जाते हैं, क्योंकि पहले से ही भरे हैं। झीलें भर जाती हैं, क्योंकि खाली हैं। झील यानी गड्ढा। जो खाली है वह भर जाता है। पहाड़ यानी भरे हुए, पहले

से ही भरे हुए। वर्षा तो होती है, लेकिन सब नीचे उतर जाती है, पहाड़ पर टिकती नहीं। क्योंकि जो पहले से भरा है, वहां जगह नहीं है, वहां टिकेगी कैसे? अगर हम शून्य हो पाएं, तो हम पूर्ण को पाने के अधिकारी हो जाते हैं। हमारी तरफ से सिर्फ शून्य हो जाने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं करना है। धर्म शून्यता है और परिणाम पूर्णता है। शून्य द्वार है, पूर्ण उपलब्धि है। लेकिन इसे लाभ-हानि की भाषा में सोचना ही मत। परमात्मा को पाने की भाषा में भी मत सोचना। अन्यथा परमात्मा इस भाषा से भी रुक जाएगा। पाने की भाषा वहां काम नहीं करती, वहां खोने की भाषा काम करती है।
मैंने सुना है, एक समुद्रतट पर बड़ी भीड़ है, बड़ा मेला लगा है, और कुछ लोग सोचने लगे तट पर बैठ कर कि गहराई कितनी है समुद्र की? तट पर बैठ कर सोचने लगे! बुद्धिमान जिनको हम कहते हैं, वे तट पर बैठ कर सोचते हैंः गहराई कितनी है समुद्र की?
अब तट पर बैठ कर कैसे पता चलेगा कि गहराई कितनी है समुद्र की? विवाद चल पड़ा! किसी ने वेद खोल लिया। किसी ने कुरान खोल ली। किसी ने कहा, बाइबिल में लिखा है, इतनी फीट है। और किसी ने कहा, वेद कहते हैं कि इतनी मील है, और वेद कभी गलत नहीं हो सकते। और किसी ने कहा, क्या रखा है वेद में और बाइबिल में! कुरान बिल्कुल सच्चा है, वह कहता है, इतनी गहराई है। और बड़ा विवाद, बड़ा शोरगुल मच गया। बड़े लड़ाई-झगड़े शुरू हो गए। सब किताबों वाले अंततः लड़ाई-झगड़े पर उतर जाते हैं। जिसने किताब पकड़ी, उसने लड़ने की तैयारी शुरू की। जिसने कहा कि यह ठीक है, उसने किसी को कहा कि वह गलत है। उपद्रव शुरू हुआ। वह बहुत उपद्रव होने लगा। तट पर बड़ी मुश्किल हो गई।
दो नमक के पुतले भी भूल से पहुंच गए थे उस मेले में। उन्होंने कहा, बड़ी मुश्किल है। लेकिन ये लोग तट पर बैठ कर ही लड़ाई-झगड़ा करते हैं। कोई उतर क्यों नहीं जाता? कोई कूद क्यों नहीं जाता? एक नमक के पुतले ने कहा, ठहरो! थोड़ा विवाद बंद करो, मैं अभी कूद कर पता लगा आता हूं। वह नमक का पुतला था, हिम्मत जुटा सका, क्योंकि समुद्र का बेटा था, कूदने में डर न लगा उसे। कूद गया। भीतर जाने लगा, खुश होने लगा, गहराई का पता चलने लगा। लेकिन जैसे-जैसे गहरा गया, वैसे-वैसे पिघला और खोया। फिर पहुंच गया, लेकिन जब पहुंच कर उसने देखा, कि मिल गई गहराई, अपने को खोजा तो खुद नहीं था। गहराई तो मिल गई थी, लेकिन पुतला पिघल गया था। अब बड़ी मुश्किल में पड़ गया। अब उसने कहा, खबर कैसे दें? वे तट पर बैठे लोग फिर विवाद करने लगे होंगे, वे फिर लड़ रहे होंगे कि कुरान सही, कि वेद सही, कि उपनिषद सही! कि कौन सही, कि कौन गलत! और मुझे पता चल गया, लेकिन अब मैं नहीं हूं, जाऊं कैसे?
थोड़ी देर तो किताबों वालों ने देखा। उन्होंने कहा, देख लिए बहुत से समुद्र में जाने वाले, कोई कभी नहीं लौटता। हम तो अपनी किताब के सहारे ही जीएंगे। वह फिर उन्होंने किताबों में झगड़े शुरू कर दिए। उसके दूसरे पुतले ने कहा, ठहरो, मैं जरा अपने मित्र को खोज लाऊं। कहां खो गया मेरा मित्र! वह दूसरा पुतला भी कूद गया। वह पहुंचने लगा मित्र के करीब। लेकिन मित्र बड़ी नई शक्ल में था। मित्र समुद्र ही हो गया था। जगह-जगह मित्र की आवाज सुनाई पड़ने लगी, जगह-जगह मित्र की सुगंध आने लगी, लेकिन दिखाई नहीं पड़ता है। मित्र कहां है? वह तो सागर ही हो गया है।
लेकिन जैसे-जैसे-जैसे-जैसे मित्र का पता चलने लगा, मित्र का पता चलने लगा, आखिर पता चल गया, चल गया पता कि मित्र सागर हो गया, लेकिन तब तक वह खुद ही सागर हो गया था। तब वे बड़ी मुश्किल में पड़ गए। अब वे लौट कर कैसे खबर दें!
फिर मेला उजड़ गया। लोग अपनी किताबें लेकर घर वापस चले गए। कुछ अदल-बदल
भी हो गई। कोई दूसरे की किताब ले गया, किसी ने इसकी किताब बदल ली। लड़ाई-झगड़े में हो ही गया कुछ। कोई किसी से राजी हो गया, कोई किसी से नाराज हो गया। लेकिन किताबें लेकर लोग वापस चले गए। कोई बाइबिल लेकर आया था, गीता लेकर चला गया। कोई गीता लेकर आया था, कुरान लेकर चला गया। अदल-बदल वहां हुई, लेकिन किताबें हाथ में थीं सो हाथ में रहीं, हाथ खाली लेकर कोई न गया। हर साल वहां मेला फिर भर जाता है। और हर साल लोग पूछते हैं कि वे पुतले
तो नहीं लौटे! अब वे पुतले सागर की गहराई में भी हैं, सागर की लहरों पर भी हैं। वे भी सुनते हैं कि वे किताबों वाले कह रहे हैं कि पुतले तो नहीं

लौटे! लेकिन बड़ी मुश्किल है। वे लोग सिर्फ किताबों की भाषा समझते हैं। पुतले चिल्लाते भी हैं सागर की लहरों से, लेकिन सागर की लहरों की भाषा वे नहीं समझते। जो सागर की गहराई में न गया हो, वह सागर की भाषा कैसे समझे? वे बहुत चिल्लाते हैं कि सुनो हमारी तरफ, यह रहा सागर, आओ, कूद जाओ, मिल जाओ, एक हो जाओ, जान लो। लेकिन वे अपनी किताबों में उलझे रहते हैं। बल्कि कोई-कोई तो कहता हैः सागर बड़ा शोरगुल मचाता है, किताबों के पढ़ने में बड़ी बाधा पड़ती है। यह दुष्ट सागर शोरगुल ही मचाए चला जाता है। हम इतनी ऊंची बातें कर रहे हैं, और यह सागर नाहक ही चिल्लाए चला जाता है। और वे पुतले बड़े हैरान हैं। वे कहते हैं कि हमें भेजा था, हम खो भी गए, हमने जान भी लिया, अब हम चिल्ला रहे हैं। लेकिन हमारी और उनकी भाषा में फर्क पड़ गया। हम सागर की गहराई की भाषा बोलते हैं, वे तट के किनारे की भाषा बोलते हैं। तट की भाषा और सागर की भाषा में कहां संबंध है?
समाधि है सागर की गहराई में जाना। इसलिए बहुत कठिनाई भी है। क्योंकि वहां जो भाषा चलती है, वह आपके तट पर नहीं चलती है। और वहां से जब चिल्लाओ तो आपकी समझ में कम आता है, नासमझी ज्यादा हो जाती है। न चिल्लाओ तो भी नहीं बनता, क्योंकि तट पर बैठे हुए लोग दिखाई पड़ते हैं कि वे विवाद कर रहे हैं। वे कह रहे हैं, सागर की गहराई कितनी है?
जानना होगा गहराई को, तो गहराई होकर ही जाना जा सकता है। इसलिए मुझसे
मत पूछें कि क्या मिलेगा। जब संसार में कुछ मिलता हुआ दिखाई न पड़े और मन घर की तरफ लौटने लगे, और बाजार व्यर्थ हो जाए और अंतर्यात्रा शुरू हो जाए, तो पहुंच जाना और जान लेना, वह सदा प्रतीक्षा कर रहा है। जब भी आप जाएंगे तो वह यह न कहेगा कि बड़ी देर लगा दी। वह कहेगा, आओ, आ जाओ। जो जब भी आ जाए तभी वहां स्वीकृत है।
कुछ और प्रश्न रह गए, कल सुबह उनकी बात कर लेंगे। लेकिन जिन्हें गहराई में जाना है, वे सांझ, रात के प्रयोग में आ जाएं। तट पर कब तक खड़े रहेंगे? सागर बहुत दिन से बुलाता है!
मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।